वक्ष-परीक्षा

हृत्पिंड और फेफड़ेकी सम्पूर्ण परीक्षाएँ, नाड़ी-परीक्षा

तथा

रोगोंके विवरण समेत

एम० भट्टाचार्य एण्ड को० प्रा० लि०

होमियोपैथिक केमिस्ट्स, फार्मासिस्ट्स एण्ड पब्लिशर्स

७३, नेताजी सुभाष रोड,

कलकत्ता—१

मूल्य २.००

वक्तव्य

चिकित्साके लिये जिस तरह औषधि-ज्ञानकी आवश्यकता है, उसी तरह शारीरिक यंत्रोंके ज्ञान और उनकी परीक्षा किस तरह की जाती है, इसका जानना भी परम आवश्यक है। शरीरके भीतरी यंत्रोंमें हृत्पिंड तथा फेफड़े अत्यन्त प्रधान यंत्र हैं, इनकी परीक्षा सहज कार्य नहीं है; जबतक इन यंत्रोंके स्थान तथा इनसे उत्पन्न हुई प्रतिध्वनियोंका ज्ञान न होगा, तबतक कदापि इनकी परीक्षा न हो सकेगी।

इस ग्रन्थमें—इसीलिये बहुत खोज और जाँचके साथ हृत्पिंड तथा फेफड़ेके सम्बन्धकी जितनी तरहकी परीक्षा-प्रणालियाँ आजतक प्रचलित हुई हैं, उन सबका ही परिचय इस ढंगसे देनेकी चेष्टा की गयी है, कि विद्यार्थी तथा गृहस्थ और चिकित्सक सभी इसका अध्ययनकर सरलता-पूर्वक इन यंत्रोंकी परीक्षा कर सकें।

हृद्-यंत्रसे नाड़ीका बहुत अधिक सम्बन्ध है, इसीलिये इस ग्रन्थमें नाड़ी तथा हृत्पिंडका सम्बन्ध बतानेके साथ-ही-साथ नाड़ी-परीक्षा विषय भी सम्मिलित कर दिया गया है।

आशा है, कि यह ग्रन्थ सबोंके ही कार्यमें सहायता पहुँचाकर हमारा उद्देश्य सफल करेगा।

कलकत्ता
इकनमिक फार्मेसी
ता० २०-३-४५

भवदीय—
एम० भट्टाचार्य एण्ड को०

पाँचवें संस्करणकी भूमिका

इस ग्रन्थका चौथा सस्करण जल्द ही खत्म हो जानेके फलस्वरूप अपने पाठकोंके सामने पाँचवाँ सस्करण रखते हुए बहुत ही आनन्द हो रहा है। यह केवल पूर्व सस्करणका ही सशोधित पुनर्मुद्रण है।

वर्तमान परिस्थितिमें कागज, छपाई वगैरहकी महँगीके कारण इसके प्रकाशनका खर्च बहुत ही बढ़ गया है, जिससे मूल्य ज्यादे होना चाहिये था, फिर भी अपने पाठकोंकी सुविधाके लिये इस अपूर्व ग्रन्थका मूल्य पूर्ववत ही रखा गया है।

आशा है, हमारे पाठक पूर्व सस्करणकी भाँति ही इस सस्करणको भी अपनाकर हमें कृतार्थ करेंगे।

कलकत्ता
२ नवम्बर १९६४ } **एम० भट्टाचार्य एण्ड क० प्रा० लि०**

विषय-सूची

तीसरा अध्याय

चौथा अध्याय

पाँचवाँ अध्याय

सातवाँ अध्याय

वक्ष-परीक्षा

पहला अध्याय

वक्षको हिन्दीमें छाती और अंगरेजीमें चेस्ट (chest) कहते हैं। कितनी ही ऐसी बीमारियाँ हैं, जिनमें वक्षकी परीक्षाकी आवश्यकता पड़ती है ; पर वक्ष-परीक्षाका मतलब, वक्षके ऊपरी भागकी परीक्षासे ही नहीं है, बल्कि सामनेवाला भाग, दोनों बगलोंका भाग और फिर पीछे-वाला पीठका भाग ; इस तरह वक्षोदर-मध्यस्थ पेशी—वह पेशी, जिससे पेट और छाती अलग होती है (diaphragm), जहाँ पसलियाँ अन्त होती हैं—वह भाग और ठीक इसके पीछेवाले भाग—इतने भागकी परीक्षा करनी पड़ती है। इस इतने भागके भीतर शरीरके प्रधान अंग हृत्पिंड और फेफड़े तथा कितनी ही प्रधान-प्रधान धमनियाँ और शिराएँ हैं, जिनके कारण शरीरमें रक्तका संचालन होता है और श्वास-प्रश्वासकी क्रिया होती है। इनकी बीमारियोंमें ही वक्ष-परीक्षाकी आवश्यकता पड़ती है।

वक्षकी बनावट

वक्षकी हड्डियाँ—वक्षको देखनेसे ही मालूम होता है, कि यह मानो दाहिने, बायें—इस तरह दो भागोंमें बटा है। इसे बाँटनेवाली एक हड्डी है। दोनों ओरके वक्षके मध्यमें यह हड्डी रहती है—इसे

वक्षोस्थि (sternum) कहते हैं और इस वक्षोस्थिके दोनों ओर, दाहिने-बायें पसलियों (ribs) का सिलसिला है। ये पसलियाँ बारह-बारहके हिसाबसे दोनों ओर रहती हैं। वक्षोस्थिके गलेके गड्ढेके नीचेसे, छातीके बीचमें होती हुई, पेटतक चली आई है। वक्षोस्थिके तीन खंड हैं—ऊपरवाला चौड़ा भाग ऊर्द्ध-खंड (manubrium), फिर मध्य-खंड कुछ लम्बा भाग (masosternum) और सबके नीचेवाला भाग अग्र-खंड (xiphoid process) है। वक्षोस्थिपर कुछ गड्ढे या स्थालक (facet) होते हैं और इन स्थालकोंके नीचे दोनों ही तरफ सात सात ऐसे स्थालक होते हैं, जिनपर पसलियोंके सिरेपरकी उपास्थिकी नोक रहती है। इनपर ही पसलियोंका सिरा जुड़ता है। वह इस तरह कि ऊपरी खंडसे पहली पसलीकी उपास्थि, ऊपरी और बिचले खंड जहाँ मिले हैं, वहाँ दूसरी पसलीकी उपास्थि और बीचवाले खंडके आखिरी भागसे तीसरी, चौथी, पाँचवी और छठी पसलीकी उपास्थि मिलती है। सातवीं पसलीकी उपास्थि मध्य और अग्रखंड जहाँ मिले हैं, उस जगहपर है। पहले ही बता चुके हैं, कि दोनों ओर बारह बारह पसलियाँ होती हैं। सबसे ऊपर और सबसे नीचेवाली पसलियाँ दूसरी पसलियोंकी अपेक्षा बहुत छोटी होती हैं, सारांश यह कि दाहिने बारह और बायें बारह—इस तरह २४ पसलियाँ होती हैं, जिनमें वक्षके ऊपरसे आरम्भकर दाहिने और बायेंकी सात पसलियाँ वक्षोस्थिसे जुड़ी हैं, ये ही वास्तविक पंजरास्थि, पर्शुका या पसलियाँ (true ribs) हैं और बाकी नकली पसलियाँ (false ribs) कहलाती हैं। दाहिने-बायेंकी आठवीं, नवीं और दसवी पसलियाँ वक्षोस्थिसे नहीं मिली हैं, बल्कि सातवीं पसलीसे मिली हैं, बाकी ग्यारहवीं और बारहवी किसीसे न मिलकर एकदम खुली हुई-सी हैं। इसलिये इनका एक नाम निराधार पसलियाँ (floating ribs) भी है। वक्षोस्थि और पसलियोंके बीचमें वक्षास्थिसे जुड़ा एक कार्टिलेज

रहता है। यही उपपर्शुका (costal cartilage) कहलाता है; पसलियोंके बीचमें मांस-पेशियाँ रहती हैं। इन्हें पर्शुका-मध्यस्थ स्थान

चित्र न० १
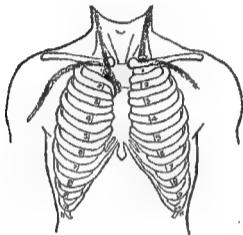
इसमें बीचमें वक्षोस्थि और दोनों ओर पसलियाँ, ऊपरकी ओर अक्षक दिखाया है।

(inter-costal space) कहते हैं। मांस-पेशियोंके संकोचनके कारण ही श्वास-प्रश्वासके समय वक्षोस्थि तथा पसलियाँ ऊपर चढ़तीं और उतरती हैं। यह तो सामनेवाला भाग हुआ।

सामनेवाले भागमें एक चीज और भी ध्यान देनेकी है। यह है—**अक्षक**। गर्दनके दोनों ओर जो दो लम्बी हड्डियाँ हैं—ये वे ही हैं। इनका एक सिरा वक्षोस्थिसे और दूसरा स्कन्धास्थिसे जुड़ गया है।

अब पीछेकी ओर चलिये :—

स्कन्धास्थि (Scapula)—पीठके दोनों ओर कन्धेके पास जो दो बड़े, चिपटे तिकोनिया हाड़ हैं, उन्हें ही स्कन्धास्थि (scapula) कहते हैं।

मेरुदंड (Spinal cord)—इसे पीठकी रीढ़ भी कहते हैं। गर्दनके नीचेवाले भागसे, कमरसे नीचे वस्ति-गह्वरतक एक डण्डे-सी जो कड़ी चीज है, वही मेरुदण्ड कहलाती है। मेरुदंड एक हड्डीकी लड़ी है। इसमें एक-पर-एक हड्डी सजायी हुई है। इन्हें कशेरुका (vertebra) कहते हैं। ये अगूठीकी तरह होती हैं और एक पूँछ-सी निकली होती है। समस्त मेरुदडमें २६ हड्डियाँ हैं। इनमें ७ गर्दनमें (cervical vertebra) हैं। पहली कशेरुका हड्डीपर ही माथा घुमाया जाता है। उसके नीचेवालीको अगरेजीमें ऐक्सिस (axis) कहते हैं। पीठमें १२ कशेरुकाएँ हैं। इनमें २ को छोड़कर ऊपरवाली १० कशेरुकाओंके सिरोंपर एक छोटा-सा स्थालक (facet) रहता है। यही पसलियाँ आकर जुड़ती हैं। ऊपरवाली १० पसलियोंके सिरे पीठकी रीढ़की इन कशेरुकाओंसे मिले रहते हैं और ११वीं तथा १२वीं पसलियोंके पीछेवाला सिरा ११वीं तथा १२वीं कशेरुकासे मिला रहता है।

वक्ष-गह्वर (Thorax)—इस तरह हड्डियों द्वारा घिराव होकर जो एक कोठरी-सी चीज तैयार होती है, उसे वक्ष-गह्वर (thorax) कहते हैं। यह कोठरी मेरुदड, वक्षोस्थि, पंजरास्थि (पसलियाँ) वगैरहके आपसमें मिलनेके कारण तैयार होती है। इसका भीतरी भाग ही वक्ष-गह्वर है।

वक्षगह्वरके भीतरी और बाहरी अंग

अक्षकका ऊपरी भाग (Supra-clavicular)—यह भाग कंठास्थिके ऊपर है। इसी हड्डीको हँसली भी कहते हैं।

दोनों ओरकी अक्षकास्थिका स्थान (Clavicular)—वह स्थान है, जहाँ दोनों ओरके अक्षक हैं।

दोनों ओरके अक्षकका निचला स्थान (Infra-clavicular)—यह जगह अक्षकोंके नीचेसे आरम्भ होकर चौथी पसलीतक गयी है।

स्तन-प्रदेश (Mammary)—यह दोनों ओर है। चौथी पंजरास्थिके ठीक नीचेसे आठवीं पसलीतककी जगह।

दोनों ओरके स्तन-प्रदेशका निचला भाग (Infra-mammary) —यह भाग भी दोनों ओर है। आठवीं पसलीसे आरम्भ होकर यह सबके नीचेवाली पसलीतक चला गया है।

ऊर्द्ध वक्षोस्थि (Superior sternal)—यह वक्षोस्थिका ऊपरी भाग है।

मध्य वक्षोस्थि (Middle sternal)—वक्षोस्थिके बीचवाली जगह।

अधो-वक्षोस्थि (Inferior sternal)—वक्षोस्थिके ठीक नीचे-वाला स्थान।

दोनों ओरके कक्ष (Axillary)—पार्श्व और बाँहकी जड़के नीचेवाली जगह। यह स्थान चौथी पसलीके ऊपर है।

मध्य-कक्ष (Middle axillary)—बगलकी चौथी पसलीसे लेकर आठवीं पसलीतकका स्थान।

दोनों ओरका अधोकक्ष (Inferior axillary)—बगलकी आठवीं पसलीके ठीक नीचे बारहवीं पसलीतकका दोनों ओरका स्थान।

चित्र न० २

इसमें स्वरयन्त्र, कण्ठनाली, कण्ठनालीके नीचे अन्तक, फुस्फुस, बायें हृत्पिण्ड, पसलियाँ, पाकस्थली, वक्षोदर-मध्यस्थ-पेशी, उदरमें दाहिनी ओर यकृत, बाईं ओर प्लीहा, मूत्रपिण्ड, आँतें, मूत्राशय प्रभृति दिखाया है।

अंसोर्ध्व-प्रदेश (Supra-scapular)—दोनों तरफकी स्कन्ध-अस्थिका ऊपरी भाग।

दोनों ओरकी स्कन्धास्थिका स्थान (Scapular)—कन्धेकी हड्डीकी जगह।

दोनों ओरकी स्कन्धास्थिका मध्य-स्थान (Inter scapular)—यह स्थान दोनों ओरकी स्कन्धास्थियोंके बीचमें है।

दोनों ओरकी स्कन्धास्थियोंका निम्नप्रदेश (Infra-scapular)—यह जगह स्कन्धास्थिके नीचेवाले कोनेसे आरम्भ होकर बारहवीं पसली-तक चली गई है।

ऊपर लिखे सभी नाम वक्षके ऊपरी भागके हैं। वक्षके भीतरी भाग अर्थात् वक्ष-गह्वरमें नीचे लिखे यंत्र हैं :—

(१) **रक्तवाहक संस्थान** (Circulatory system)—इसमें हृत्पिण्ड और रक्तवहा नाड़ियाँ आ जाती हैं।

(२) **श्वास-प्रश्वास संस्थान** (Respiratory system)—इसमें दोनों फेफड़े आ जाते हैं।

यद्यपि दाहिनी ओर यकृत और बायीं ओर प्लीहाका भी कुछ अंश वक्षके भीतर आ जाता है, परन्तु उनसे इस विषयका कोई सम्बन्ध नहीं है। अतएव, उनके वर्णनकी यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है। सच तो यह है, कि वक्ष-परीक्षाका अर्थ है—हृत्पिण्ड और फेफड़ोंकी बीमारियोंकी जाँच।

हृदयमें जब कोई बीमारी हो जाती है, तो उसकी गति और आवाजमें फर्क आ जाता है अर्थात् उसके भीतर होनेवाली धड़कनकी चाल, गिनती तथा आवाजमें गड़बड़ी पैदा हो जाती है।

इसी तरह जब फेफड़ेमें कोई बीमारी होती है, तो भी उसकी श्वास-प्रश्वासके कारण होनेवाली आवाजमें फर्क आ जाता है। इन सबकी जाँच ही वास्तवमें वक्ष-परीक्षा है।

दूसरा अध्याय

वक्ष-परीक्षा करनेके नियम

रोगीको कैसे बैठाना चाहिये—साधारणतः कुर्सी या तिपाईपर बैठाकर रोगीकी परीक्षा की जाती है। यदि रोगी इनपर बैठने योग्य न हो, तो लेटाकर परीक्षा करनी चाहिये। इस समय रोगीको तनकर बैठना चाहिये, यदि परीक्षा सामनेवाले भागकी करनी हो, तो रोगीके दोनों हाथ नीचेकी ओर लटका देने चाहियें और माथा पीछेकी ओर इस भावसे रखना चाहिये, जिसमें छाती भरपूर तनी हुई रहे। इसी तरह जब पिछले भाग या पीठकी परीक्षा करनी हो, तब रोगीको अपना माथा सामनेकी ओर लटका देना चाहिये। इसमें पीठवाला भाग तना रहता है। जब दोनों पार्श्वोंकी परीक्षा की जाये, तो रोगीके हाथ ऊपरकी ओर उठवा देने चाहियें।

रोगीकी साँस—इस समय रोगीको स्वाभाविक रीतिसे साँस लेनी चाहिये। श्वास प्रश्वास बहुत झटकेसे और जोरसे न लिया जाये। इस बातपर भी ख्याल रखना चाहिये, कि किसी तरहकी आवाज मुँह या नाकसे न हो।

परीक्षाका स्थान—इस परीक्षाके समय चिकित्सकको बहुत सावधान रहना पड़ता है, क्योंकि उसके कानमें गयी हुई आवाजपर ही रोगका निदान निर्भर करता है। अतएव, यह परीक्षा ऐसे स्थानपर करनी चाहिये, जहाँ शोर गुल या अन्य प्रकारकी आवाजें न आती हों। शान्त स्थानमें ही यह परीक्षा करनी चाहिये।

परीक्षाका प्रकार—छः प्रकारसे वक्षकी परीक्षा की जाती है। इसके बाद कहीं ठीक-ठीक पता लगता है, कि रोग क्या है और किस स्थानपर है :—

(१) दर्शन अर्थात् देखकर (Inspection)।
(२) स्पर्शन (Palpation) अर्थात् स्पर्श करके।
(३) परिमापन (Mensuration) अर्थात् वक्षकी माप लेकर।
(४) आघातन (Percussion) अर्थात् हाथसे ठोंककर।
(५) आकर्णन (Auscultation) यानी सुनकर।
(६) आलोड़न (Succussion) अर्थात् हिलाकर।

इनमें कितनों ही का प्रयोग फेफड़ोंकी बीमारीमें होता है और कितनों ही का हृदयकी बीमारियोंमें और कितनोंका दोनों ही प्रकारके रोगोंमें प्रयोग करना पड़ता है।

(१) दर्शन
(Inspection)

दर्शनका अर्थ है—देखना। दर्शनकी क्रियासे यह मालूम होता है, कि—(क) वक्षकी गढ़नमें किसी तरहका विकार या गड़बड़ी तो नहीं है। (ख) साँस लेने और छोड़नेके समय वक्षका तनना और फिर उतरना ठीक-ठीक होता है या नहीं। (ग) श्वास-प्रश्वासकी प्रकृति ठीक है या घटी-बढ़ी। (घ) दोनों तरफकी पसलियोंसे लेकर ऊपर हँसलीतक छातीकी बनावटमें कोई फर्क तो नहीं है। (ङ) हँसलीकी हड्डियाँ बहुत ऊँची तो नहीं उठी हुई हैं। (च) निचले अंशमें छातीकी चौड़ाई विशेष तो नहीं है। (छ) साँस लेते समय वक्ष दो-से-तीन इञ्चतक विस्तृत होता है या नहीं। (ज) श्वास-प्रश्वासके समय वक्षोदर-मध्यस्थ-पेशीके ऊपरवाला दाहिना, बायाँ दोनों ही अंश

समान मात्रसे ऊपर चढता और उतरता है या नहीं। (म) स्तन वृन्त अपने ठीक स्थानपर हैं या नहीं। ये चौथी पर्शुका अथवा उसके ऊपरी और निचले किनारेपर हैं या नहीं।

यह दर्शन क्रिया रोगीको शान्तिसे लेटाकर और जब स्वाभाविक रूपसे साँस लेता हो, उस समय करनी चाहिये और फिर उसे कहना चाहिये, कि जोरसे साँस लें, इस अवस्थामें भी उसे फिरसे देखना चाहिये।

वक्षका प्रकार और भेद

(१) **स्वस्थ वक्ष**—यह दोनों ओरसे देखनेमें सुडौल रहता है, इसके किनारे चिकने रहते हैं। इसमें गहरे गढे नहीं पडे रहते और हँसली या अक्षकके नीचे थोड़ा सा ढालवाँ रहता है। दोनों ओरके बगलके नीचे कुछ चिपटा रहता है। वक्षोंका वक्ष कुछ गोल आकार लिये होता है। वक्षोस्थि ठीक बीचोबीच रहती है। वक्षोस्थिका ऊपरी अंश (manubrium) कुछ महराबदार सा दिखाई देता है, अक्षकके नीचे छोटा सा गढा रहता है। यह ज्यादा गहरा न रहना चाहिये और तभी दिखाई देना चाहिये, जब स्नायु तने हों—एक कुछ अधिक स्पष्ट गढहा उरच्छादिनी (pectoralis) को अंसच्छदा पेशीसे अलग करता दिखाई देता है। यह मध्य रेखासे कुछ दूर रहता है और इसीको अक्षकके नीचेका गड्हा कहते हैं।

वक्षको देखनेके समय परीक्षकको पहले सामनेसे देखना चाहिये, फिर बगलसे, फिर पीछेसे और अन्तमें उसे पीछे और ऊपरसे कन्धोंको देखना चाहिये। पीछेसे देखनेपर उसका सुडौलपन या असमान फैलावको प्रकट लेनेमें बहुत सहायता पहुँचाती है। पीछेसे वक्ष परीक्षा करते समय यह भी देख लेना चाहिये, कि हँसलीकी जगहकी कशेरुकाओंके

किनारे बहुत उठे हुए तो नहीं हैं, वे मध्य-रेखासे समान अन्तरपर तो हैं और उनका निम्न-भाग दोनों तरफ ठीक-ठीक समान पटलपर तो है।

(२) **विकृत वक्ष या अस्वाभाविक वक्ष**—ये तीन श्रेणीके हो सकते हैं :—

(क) प्रथम श्रेणीमें दो प्रकारके हैं—(१) पक्षाकार वक्ष (Alar chest), (२) चिपटा वक्ष (Flat chest)।

इन दोनों प्रकारके वक्षोंसे मालूम होता है, कि फेफड़ेकी कोई बीमारी हुई है या होना चाहती है।

(ख) दूसरी श्रेणीके—रिकेटी (अस्थि-विकारपूर्ण वक्ष), पीजन (कबूतरकी तरह वक्ष और हैरिसन सकलस आते हैं)—ये दोनों रोगका भोग हो जानेपर होते हैं।

(ग) बैरेल शेप्ड चेस्ट अर्थात् पीपेका आकारका वक्ष—ये दोनों ही प्रकार—जिस समय रोगी रोग भोगता रहता है, उस समय होते हैं।

इन सबमें ही वक्ष-गह्वरके दोनों अंशोंमें ही परिवर्त्तन होते हैं, इसलिये सुडौलपन नष्ट नहीं हो जाता। इनके अलावा, और भी परिवर्त्तन रोगके कारण हो सकते हैं और वक्षकी शकल भी बदल सकती है। एक एक ओर ऊँचा-नीचा हो जा सकता है। इनमें तीन प्रकारके वक्ष आते हैं—(१) फनेल वक्ष (चोंगाकी तरह)। (२) एक पार्श्वमें या एक स्थानमें ऊँचा वक्ष। (३) एक पार्श्व या किसी एक स्थानमें दबा हुआ वक्ष।

पक्षाकार वक्ष
(Alar chest)

इसमें वक्ष पक्षीके डैनेकी तरह हो जाता है। इसमें दोनों स्कन्धास्थियाँ डैनेकी तरह उठकर ऊँची हो जाती हैं और कन्धा झुक जाता है। इसमें वक्षका स्वाभाविक गोल आकार खराब हो जाता है।

वक्ष कुछ लम्बा और चिपटा-सा हो जाता है। इसमें गर्दन लम्बी पड़ जाती है और कण्ठ निकल आता है ; **यक्ष्मा होनेकी सम्भावना** होनेपर छातीकी ऐसी अवस्था हो जाती है।

चिपटा वक्ष
(Flat chest)

इसमें वक्षकी सामनेवाली पसलियोंका महराबदार भाव बिगड़कर उनकी स्वाभाविक गोलाई चली जाती है, वे कुछ-न-कुछ सीधी-सी हो जाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि कशेरुकाओंसे वक्षोस्थिकी दूरी घट जाती है। इसीलिये इस ढगका वक्ष चिपटा दिखाई देता है ; इसे **थाइनोयड चेस्ट (Thinoid)** भी कहते हैं। **यक्ष्मा होनेकी जिसे सम्भावना** रहती है, उसका ही वक्ष ऐसा हो जाता है।

रेकिटिक वक्ष
(Rechitic chest)

अस्थि विकार रोगमें स्वाभाविककी अपेक्षा अस्थियाँ ज्यादा कोमल रहती हैं। इसीलिये, जरा भी जोर लगानेपर उसका आकार बिगड़ जाता है। रोगकी प्रकृतिके अनुसार जहाँ अस्थि और उपास्थिकी सयोग होता है, उसी अशमें विकार पैदा होता है और इसीलिये जब कोई ऐसा कारण आ जाता है कि फेफड़ोंमें यथोचित रूपसे हवा नहीं भर पाती, तो बाहरी हवाके दबावसे यह अश भीतरकी ओर झुक जाता है। इसमें वक्षोस्थिके दोनों ओरका अंश कुछ थोड़ी दूरीपर दब जाता है।

कबूतरकी तरह वक्ष
(Pegion Breast)

जिस समय पसलियाँ कोमल रहती हैं, उस समय साँस लेनेमें किसी तरहकी रुकावट होनेपर वे सीधी-सी हो जाती हैं, जहाँ उनमें घुमाव बहुत कम रहनेके कारण जरा-सा भी दबाव पड़नेपर उनकी शकल बदल जाती है। इसका फल यह होता है कि वक्षोस्थि ऊपर उठ आती है और पेटके सामनेवाले भागमें स्पष्ट निकल आती है। इसीलिये नीचेकी ओर कोना या गड्हा-सा पड़ जाता है; वक्ष त्रिकोनिया-सा होता है। इसको काक-पक्षी रोग कहते हैं।

हैरिसन्स ग्रूव
(Harrisons groove)

यह भी अस्थि-विकार या काक-पक्षी वक्षसे ही सम्बन्ध रखता है। इसमें वक्षोस्थिके सबसे नीचेवाले अंश अग्र-खंड (xiphoid process) के पाससे पेटके दोनों ओर एक तरहका गड्हा-सा पड़ जाता है। इसे ही हैरिसन्स सकलस या हैरिसन ग्रूव कहते हैं। पीजियन ब्रेस्टवालोंमें यह हैरिसन सकलस भी दिखाई देता है।

पीपाकार वक्ष
(Barrel-shaped chest)

वायु-स्फीति (Emphysema) रोगकी प्रबल अवस्थामें यह वक्ष देखनेमें आता है। वायु-स्फीतिमें फेफड़ेका आकार बढ़ जाता है और उसे स्वाभाविककी अपेक्षा अधिक स्थानकी जरूरत पड़ती है। इसीलिये पसलियाँ ज्यादा फैल जाती हैं, मेरुदण्ड अस्वाभाविक टेढ़ा पड़ जाता है

तथा वक्षोस्थि भी टेढ़ी हो जाती है। इसमें वक्षका सामने पीछेका व्यास बहुत बढ़ जाता है और पीठ तथा वक्ष मिलकर पीपेकी तरह दिखाई देते हैं। गला छोटा दिखाई देता है। गहरी साँसके समय भी इस ढंगकी छाती बहुत कम फैलती है। वक्षोस्थि और पसलियाँ ऊँची पड़ जाती हैं और पसलियोंके बीचकी जगह (inter-costal space) फैलकर नीची हो जाती है।

उभयपार्श्विक गड्ढे पड़ना
(Bilateral depression)

ऊपर जो चिपटा वक्ष बताया जा चुका है, यह उसीकी बढ़ी हुई अवस्था है। यक्ष्मा रोगमें ही ऐसा होता है, इसमें वक्षमें दोनों ओर गड्ढे पड़ जाते हैं।

फनेल वक्ष
(Funnel-shaped chest)

चोंगेके आकारका वक्ष। इसको दबी हुई वक्षोस्थि (Depresed sternum) भी कहते हैं, क्योंकि इसमें वक्षोस्थि और उसका निचला भाग दब जाता है। इसीका यह परिणाम होता है कि यह स्थान चोंगेकी तरह हो जाता है और गढ़े पड़ जाते हैं।

एक ओरका ऊँचा वक्ष
(Unilateral or Local Prominence)

फुफ्फुसावरणमें जल सञ्चयके कारण ऐसा होता है। इसमें वक्षका एक ओरका स्थान या कोई एक स्थान फूल जाता है और पर्शुका-मध्यस्थ स्थान—पसलियोंके बीचकी जगह (inter-costal space)

में जो स्वाभाविक खोखलापनका भाव रहता है, वह नहीं रहता। फेफड़ेकी अन्य कई बीमारियोंमें ऐसा दिखाई देता है (फेफड़ेकी बीमारीमें इसका वर्णन मिलेगा)।

एक ओर धँसा वक्ष

(Unilateral or Local depression)

इसमें एक ओरका वक्ष धँस जाता है या चिपटा पड़ जाता है और पसलियोंके भीतरकी जगह सँकरी पड़ जाती है (इसका भी विवरण फेफड़ेकी बीमारियोंमें मिलेगा)।

मेरुदण्डकी विकृति

(Cervature of Spine)

इस दर्शन-क्रियामें जिस तरह वक्षका अग्र भाग देखा जाता है, उसी तरह पीछेवाला भाग भी। पीछेवाले भागमें मेरुदण्डपर भरपूर नजर रखनी पड़ती है; इसमें खासकर मेरुदण्डका टेढ़ा पड़ जाना है। साधारणतः मेरुदण्ड दो तरहसे टेढ़ा पड़ता है। जैसे :—

१। **सामनेकी ओर धँसा मेरुदण्ड**—इसी वजहसे लोग कुबड़े पड़ते हैं; इसमें मेरुदण्ड सामनेकी ओर टेढ़ा पड़ जाता है और इसी वजहसे दोनों पाँखरे उभड़ पड़ते हैं।

२। **मेरुदंडका कमरकी ओर टेढ़ापन**—पहले तो मेरुदण्ड पीठकी जगहपर टेढ़ा पड़ता है, इसके बाद जब बीमारी बढ़ जाती है, तो कमरकी जगहपर एक दूसरा टेढ़ापन दिखाई देने लगता है। इसका नतीजा यह होता है, कि एक ओरका कन्धा, वक्ष और पीठ ऊँची हो जाती है और दूसरी ओरकी स्कन्धास्थि झुक जाती है तथा वस्ति-गह्वर भी एक ओर ऊँचा हो जाता है।

२। स्पर्शन
(Palpation)

स्पर्शनका अर्थ है—छूना। आँखसे देख लेनेके बाद छूकर वक्षकी परीक्षा करनेको स्पर्शन कहते हैं। इसमें छाती या पीठपर तलहथी रखकर परीक्षा की जाती है।

इसके द्वारा वक्षका आकार, जो अबतक परीक्षक आँखोंसे देख चुका है, उसको हाथ रखकर और स्पर्श द्वारा आँचकर ठीक किया जाता है।

(ख) वक्षकी गति—यह साँस लेने और छोड़नेके समय होती है।

(ग) कम्पन—बोलनेके समय वक्षमें एक प्रकारका कम्पन होता है, तलहथी, पीठ या छातीपर रखनेपर यह कम्पन अनुभवमें आता है, इसका भी हिसाब है और इस तरह हाथ रखकर परीक्षा की जाती है और जाँचा जाता है, कि कम्पन बढ़ा है, घटा है या बिलकुल ही नहीं होता।

(घ) स्पर्शका सहन न होना (Tenderness)—समूचे वक्ष या उसके किसी विशेष अंशपर हाथ रखना। इससे मालूम होता है कि कहाँ स्पर्श सहन होता है और कहाँ सहन नहीं होता।

(ङ) ह्रास-वृद्धि—कोई जगह ऊँची या नीची है।

(च) प्रतिघात-शक्तिका अनुभव—वक्ष प्राचीर दबाव सहन कर सकती है या नहीं।

साराश यह कि स्पर्शन द्वारा वक्षकी गति, स्पन्दन तथा कम्पन और हाथ रखनेपर रोगी क्या कहता है, किस ढंगकी शिकायत करता है, इसका पता लग जाता है।

स्पर्शन द्वारा परीक्षाका नियम
(Method of Palpation)

परीक्षा करनेके समय रोगीको बैठाकर या लेटाकर रोगीकी छातीपर अपना हाथ लम्बे-लम्बे भावसे रखना चाहिये। खासकर हाथ उस जगह रखना चाहिये, जहाँ किसी तरहकी सूजन मालूम हो या जिस स्थानपर रोगी दर्दकी शिकायत करता हो। यह हाथ रखनेका तरीका भी यह है, कि अंगुलियाँ चेहरेकी ओर रहनी चाहियें। इस समय परीक्षाके लिये रोगवाली जगहपर अपनी दृष्टि रखनेकी अपेक्षा रोगीके चेहरेकी ओर दृष्टि रखना इसलिये आवश्यक होता है, कि जिसमें पता लगे कि हाथ रखनेसे उसे कोई तकलीफ होती है या नहीं। वक्ष-प्राचीरमें प्रदाह रहनेके कारण दर्द हो सकता है।

वक्षोस्थि और मेरुदण्डकी जगहपर कम्पन (fremitus) अधिक हुआ करता है। अतएव, दोनों तरफ ही, मेरुदण्डसे एक-एक इञ्च हटाकर, हाथ रखना चाहिये, नहीं तो गड़बड़ी हो जा सकती है।

छाती और पीठ दोनों ओरकी तुलना करनेके लिये वक्षके तथा पीठकी दोनों ओरके ठीक एक ही जगहपर हाथ रखना चाहिये। इस समय दोनों ओर दबाव भी समान ही देना चाहिये, जिसमें ठीक-ठीक तुलना हो सके।

ऐसा भी हो सकता है, कि वक्षके कम्पनका घटना या लोप हो जाना, यह क्रिया किसी बहुत छोटी-सी जगहमें होती हो। इसीलिये परीक्षाके समय, जिस स्थानकी परीक्षा करनी हो, वहाँ समूची तलहत्थी न रखकर थोड़ा अंश पहले रखना चाहिये। इस तरह कि अंगुलीका अगला भाग या तलहत्थीका निचला अंश पहले रखे।

इस समय चिकित्सकका हाथ बहुत ठण्डा न रहना चाहिये। इससे कभी-कभी रोगी चौंक पड़ता है और कम्पन बढ़ जाता है।

(क) वक्षका आकार
(Form of Chest)

मान लीजिये कि आपने आँखोसे देखा कि वक्ष किसी जगहपर ज्यादा ऊँचा हो गया है। बहुत-सी ऐसी बीमारियाँ हैं, जिनमें वक्षका आकार ऊँचा उठ जाता है, ऐसे भी बहुतसे रोग हैं, जिनमें वक्ष नीचा पड़ जाता है या धँस जाता है (dipression of chest) यह भी हाथ रखकर अच्छी तरह निश्चित कर लिया जाता है।

(ख) वक्षकी गति
(Movement of Chest)

साँस लेने और छोड़नेमें वक्षका सचालन ठीक-ठीक होता है या नहीं। इसको अच्छी तरह निर्णय करनेके लिये हाथ रखकर परीक्षा की जाती है। यह विषय श्वास-यंत्रोंकी परीक्षाके अध्यायमें और भी खुलासा लिखा गया है।

(ग) स्पन्दनशीलता
(Vibration)

रोगीकी छातीपर हाथ रखकर, उसे १, २, ३ गिननेको कहा जाता है, इस समय रोगीके स्वरमें एक तरहका कम्पन होता है, इसको वोकेल फ्रिमिटस (vocal fremitus) कहते हैं। यह कम्पन स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुषोंमें और बच्चोंकी अपेक्षा वृद्धोंमें ज्यादा होता है। स्थूल मनुष्योंकी अपेक्षा दुबले पतले मनुष्योंमें अधिक होता है, साथ ही पीठकी अपेक्षा छातीमें अधिक अनुभव होता है। वक्षकी गड़बड़ीके कारण भी इस कम्पनमें फर्क आ जाता है। जैसे—जिनकी छाती सकरी है,

उनमें चौड़ी छातीवाले मनुष्योंकी अपेक्षा अधिक अनुभवमें आता है। दोनों ओरके कम्पनोंकी यदि तुलना करनी हो, तो दोनों हथेलियोंको दोनों ओर रखकर जाँच की जा सकती है। यदि फेफड़े सिकुड़ गये हों या श्वासनलीमें किसी तरहकी रुकावट हो, तो यह कम्पन बहुत कम अनुभव होता है। साथ ही हृत्पिण्डकी उस जगहपर, जहाँ उसे फेफड़ा ढँके हुए हैं तथा उस स्थानके ऊपरी भागमें यह वोकेल फ्रिमिटस बहुत कम देखनेमें आता है। (किस रोगमें यह कम्पन कैसा रहता है, वह "श्वास-यंत्र" के रोगोंमें देखिये)।

(घ) स्पर्श-असहनीयता

(Tenderness)

स्पर्श-असहनीयताका मतलब है—स्पर्श सहन न होना। **पार्श्व-शूल, फुस्फुसवेस्ट-प्रदाह, पसलियोंका जखम, कहीं चोट आना** प्रभृति कई ऐसे रोग हैं, जिनमें दर्द होता है और यह दर्द इतना अधिक होता है, कि रोगी हाथसे छूने नहीं देता।

(ङ) फड़कन

(Fluctuation)

किसी स्थानमें पीव या रस इत्यादि जब हो जाता है, तो उसकी परीक्षा करनेके लिये लम्बाईकी तरफ दोनों ओर दो अंगुलियाँ रखी जाती हैं। इस समय दोनों हाथ काममें लाये जाते हैं। एक ओर एक हाथकी अंगुली रखकर दूसरी अंगुलीसे दूसरे सिरेपर दबाव डालनेपर, दूसरी ओरकी अंगुलीमें एक हल्का धक्का लगता है, इसे ही फ्लकचुएशन या फड़कन कहते हैं। फेफड़ेकी कितनी ही बीमारियोंमें ऐसा होता है। (इसका वर्णन "वक्ष" और "फेफड़ेके रोगोंमें" देखिये)।

(च) प्रतिघात-शक्तिका अनुभव
(Resistance to palpation)

इससे जाँचा जाता है, कि वक्षकी प्रतिघात-शक्ति कितनी है। इस शक्तिको जाँचनेके लिये रोगीको चित सुला दिया जाता है और उसकी वक्षोस्थिपर हाथ रखकर उसे पीठकी ओर दबाया जाता है। इस समय हाथमें एक तरहका झटका भीतरसे लगता है। इसके द्वारा यही जाँच की जाती है, कि यह झटका स्वाभाविककी अपेक्षा तीव्र है या घटा हुआ। बुढ़ापे तथा यक्ष्मा (Tuberculosis), वायुस्फीति (Emphysema) इत्यादि रोगमें कड़ापन बढ़ जाता है और झटका ज्यादा अनुभवमें आता है। ऐसा होनेपर मालूम होता है, कि फेफड़े पूरी तरह फैलते नहीं।

३। आघातन
(Percussion)

इसमें अंगुलीसे छातीको ठोककर परीक्षा की जाती है अथवा पीठ या शरीरके अन्य स्थानोंकी भी इसी तरह परीक्षा की जाती है। इससे वक्षके भीतरी यन्त्रोंका आयतन निर्णय हो जाता है। रोगवाली जगहकी सीमा मालूम हो जाती है और उसके भीतरके यन्त्रोंमें क्या परिवर्त्तन हुए हैं तथा उसमें प्रतिघात शक्ति कितनी है, इन सब बातोंका पता लगता है।

आघातनकी क्रिया दो प्रकारसे होती है:—(१) मुख्य अव्यवहित आघातन (Immediate percussion) ; (२) व्यवहित आघातन (Mediate percussion)।

अव्यवहित आघातन (Immediate percussion)—इसमें सिर्फ एक हाथकी एक अंगुलीसे ठोककर वक्ष या पीठकी परीक्षा की

जाती है। इस ढंगकी परीक्षा दोनों कंठास्थियोंपर ही होती है और वहाँ तर्जनी अथवा मध्यमाको नोकसे ठोंककर देखा जाता है, कि कोई गड़बड़ी है या नहीं।

व्यवहित आघातन (Mediate percussion)—इसमें परीक्षा की जानेवाली जगहपर बायें हाथकी तर्जनी और मध्यमा—अंगुलियाँ रखकर, उसपर दाहिने हाथकी मध्यमासे ठोकते हैं।

आघातन परीक्षाकी प्रणाली
(Method of Percussion)

(क) रोगीके जिस स्थानकी (वक्ष, पीठ, पसली) परीक्षा करनी हो, वहाँसे वस्त्र एकदम हटा देना चाहिये। इससे विशेष सुविधा होती है, परन्तु स्त्री-रोगिणीके सम्बन्धमें इस देशमें यह नियम नहीं चल सकता। अतएव, उनके वस्त्रके ऊपरसे ही परीक्षा करनी पड़ती है। अतएव, इस अवस्थामें बहुत सावधानतापूर्वक परीक्षा करनी चाहिये।

(ख) पसलियोंकी हड्डियोंके बीचमें जो जगह रहती हैं (intercostal space), वहाँ मध्यमा अंगुलीको इस तरह रखना चाहिये कि उसकी तली वक्षके साथ खूब चिपक जाये, उसमें हवा जानेकी तरह न रहे।

(ग) इस अंगुलीसे वक्षोस्थिका बिलकुल ही स्पर्श न होना चाहिये। वक्षोस्थिसे इसे कुछ दूर ही रहना चाहिये, नहीं तो वक्षकी दूसरी तरफकी आवाज भी आ जायगी।

(घ) दाहिने हाथकी तर्जनी और मध्यमा या केवल मध्यमाको टेढ़ाकर कुछ नीचे झुका, उसके अगले भागसे चोट देनी चाहिये।

(ट) चोट देनेका नियम यह है, कि अंगुलीका मुका हुआ अंश कड़ा रखना चाहिये। ठोकनेके समय कलाईपर ही भार देकर ठोकना चाहिये और तुरन्त ठोकनेवाली अंगुली उठा लेनी चाहिये।

(च) चोट देनेका भी एक नियम है, यह न तो बहुत तेजीसे और न बहुत धीरे धीरे देना चाहिये, बल्कि समान भावसे देना चाहिये। दोन तीन बारसे अधिक आघात देनेकी जरूरत ही नहीं पड़ती।

(छ) इसी तरह बहुत धीमे या बहुत जोरसे भी आघात नहीं करनी चाहिये। चोट बहुत धीमी होनेपर साफ आवाज नहीं आती और बहुत जोर-जोरसे आघात देनेपर रोगीको तकलीफ होती है। दुबले रोगी और बच्चोंको तो कभी जोरका आघात देकर परीक्षा न करनी चाहिये। इसके अलावा, जोरसे आघात करनेपर कभी-कभी रोगवाली जगहमें भी हानि पहुँचती है।

(ज) कभी-कभी जोरसे आघात करनेकी भी जरूरत पड़ती है। यह उस अवस्थामें यदि रोगी बहुत मोटा ताजा होता है या खूब भीतरके यन्त्रोंकी परीक्षा और जाँच करनी होती है, कि उसमें तो कोई विकार नहीं हुआ है।

(झ) वक्ष या पीठकी परीक्षा करते समय, एक बार साँस रुकवा कर और एक बार साँस लेते हुए परीक्षा करनी चाहिये। दोनों ओर एक-एक बार परीक्षा अवश्य करनी चाहिये।

(ञ) दोनों ओरकी छातीकी परीक्षा करनेके लिये—छातीके दोनों ओर एक बार साँस छोड़वाकर और एक बार साँस लेते हुए परीक्षा करनी चाहिये ; परन्तु इस समय इस बातसे सावधान रहना चाहिये, कि जिस ढंगसे परीक्षा हो, दोनों ओरकी एक साथ कर लें, नहीं तो भ्रम हो जायगा।

आघातनके समय रोगीको रखनेका तरीका

१। रोगीको खड़ाकर या बैठाकर ही परीक्षा करना अच्छा है ; पर यदि रोगी खड़ा नहीं रह सकता या बैठ नहीं सकता, तो लाचार लेटाकर ही परीक्षा करनी पड़ेगी।

२। यदि छातीकी परीक्षा करनी हो, तो माथा कुछ पीछेकी ओर झुका रखना चाहिये और दोनों हाथ अलग रखने चाहियें।

३। बगलके स्थानकी परीक्षा करते समय हाथ सरकी ओर उठा देना चाहिये।

४। पीठकी ओर परीक्षा करनी हो, तो कन्धेकी हड्डी जरा उठा रखनी चाहिये। मतलब यह कि सिकुड़न न रहे, शरीर तना रहे, जिससे आवाज साफ़-साफ़ सुननेमें आये। इसके अलावा, इस ढंगसे परीक्षा करनेपर पसलियोंके बीचके स्थानमें अंगुली रखने और चोट देकर आवाज सुननेमें भी सुविधा होती है।

इस तरह परीक्षा करनेपर आवाज प्राप्त करनेकी कठिनाइयाँ सहजमें ही हल हो जाती है।

आघातनके समयकी आवाजें

(Resonance)

जब किसी स्थानपर चोट दी जाती है, तो भीतरसे दो तरहकी आवाज निकलती है। एक तो धीमी—थप-सी आवाज आती है, इसको धीमी (dull) या स्थूल अथवा पूर्णता बतानेवाली आवाज कहते हैं। एक दूसरी तरहकी आवाज वह निकलती है, जो किसी हवा-भरी खोखली जगहपर चोट देनेसे होती है ; जैसा—ढोल आदिपर थपकी देनेसे होता है। इस तरह छातीके भीतरकी आवाज सुननेमें आती है। इस

आवाजके आनेका कारण यह है, कि जिस स्थानपर चोट दी जाती है, वहाँ एक तरहका स्पन्दन होता है। यह स्पन्दन हड्डियोंतकमें होता है; क्योंकि उनमें आस्टिमक पदार्थमें भी लचीलापन रहता है।

यह आवाज ६ भागोंमें विभक्त की जा सकती है :—

(१) फुस्फुसकी आवाज (Pulmonary resonance); (२) अधिक खोखली आवाज (Hyper resonance); (३) स्कोडेइक रेजोनेन्स (Skodaic resonance); (४) टिम्पैनिटिक रेजोनेन्स (Tympanitic resonance); (५) एम्फोरिक रेजोनेन्स (Amphoric resonance); (६) धीमी आवाज (Dull sound), (७) स्थूल शब्द (Flat sound), (८) फटे बर्त्तनका शब्द (Cracked pot sound); (६) घंटा ध्वनि (Bell sound)।

(१) फुस्फुसका शब्द (Pulmonary resonance)—यह आवाज फेफड़ेके भीतरकी हवा और वक्षकी दीवारके कम्पनके कारण होती है। यह एक तरहकी हल्की और खोखली आवाज होती है, साँस छोड़नेकी अपेक्षा साँस लेनेके समय यह आवाज ज्यादा मिलती है। स्त्रियों तथा चिड़चिड़े मनुष्योंमें यह आवाज कुछ बढ़ी रहती है।

(२) हाइपर रेजोनेन्स (Hyper resonance)—स्वस्थ छातीपर आघात देनेपर हल्की खोखली आवाज आती है अर्थात् फेफड़ेकी जो आवाज मिलती है, उससे ज्यादा खोखली आवाज आनेपर उसे हाइपर रेजोनेन्स कहते हैं। जब वायु-कोष ज्यादा फैल जाते हैं, तब ज्यादा खोखली आवाज आने लगती है।

(३) स्कोडेइक रेजोनेन्स (Skodaic resonance)—इसका एक दूसरा नाम *सब-टिम्पैनिक रेजोनेन्स* भी है, इसे स्कोडा साहबने ईजाद किया था, इसीलिये इसका नाम यह पड़ा है।

निमोनिया या फुस्फुसावरक-झिल्लीमें ज्यादा जल जमा हो जानेपर फेफड़ेके ऊपरी अंशपर चोट देनेसे एक तरहकी बहुत ही खोखली आवाज निकलती है। इसीको स्कोडेइक शब्द कहते हैं।

(४) **टिम्पैनिटिक रेजोनेन्स** (Tympanitic resonance)—**पेटमें वायु भरने, पेट तना रहने** या **पेटमें मल** रहनेपर उसे ठोकनेसे ढोलकी तरह एक खोखली आवाज आती है, यह आध्मानका शब्द है ; इसीको टिम्पैनिटिक रेजोनेन्स कहते हैं।

(५) **ऐम्फोरिक रेजोनेन्स** (Amphoric resonance) —धातुके खाली बरतनपर चोट देनेसे जैसी आवाज होती है, यह आवाज भी ठीक उसी ढंगकी होती है। फेफड़ेकी कई बीमारियोंमें इसका वर्णन मिलेगा।

(६) **डल साउण्ड** (Dull sound)—यह धीमी आवाज है। थपकीकी तरह आवाज होती है, इसे पूर्णता बतानेवाला शब्द भी कह सकते हैं। अगर आघात करनेपर फेफड़ेकी खोखली आवाजके बदले धीमी, भरापनकी आवाज आये, तो उसे डल साउण्ड कहते हैं। जब फेफड़ा भरा, कड़ा या ठोस हो जाता है, तो आवाज घट जाती है, उसी समय यह धीमी आवाज निकलती है।

(७) **स्थूल शब्द** (Flat sound)—इसका दूसरा नाम मृत-शब्द (dead sound) भी है। इसका मतलब है—आवाज ही न आना। यदि चोट देनेपर प्रतिध्वनि बिलकुल ही न मिले, तो उसे डेड साउण्ड कहते हैं, फेफड़ेमें पानी हो जाने और प्लीहा तथा यकृत कोमल हो जानेपर यह आवाज मिलती है।

(८) **फटे बरतनकी आवाज** (Cracked pot sound) —अगर फटी हांड़ीके शब्दकी तरह ठोकनेपर आवाज आये, तो उसे क्रैक्ड पाट साउण्ड कहते हैं। चोट देनेके साथ रोगीका मुँह खुला रखकर, कान लगाकर सुननेसे यह आवाज साफ मिलती है।

(६) बेल साउण्ड (Bell sound)—इसका वर्णन "आकर्णन" अध्यायमें मिलेगा। इसमें घण्टीकी तरह आवाज सुन पड़ती है।

[इन सबका पूरा विवरण "श्वास-यन्त्र" तथा "हृत्पिण्डके रोगोंमें" मिलेगा।]

३। परिमापन
(Measurement)

इसमें वक्षकी माप लेकर यह देखा जाता है, कि—(क) साँस लेने और छोड़नेके समय दोनों ओरकी छाती समान भावसे सिकुड़ती और फैलती है या नहीं, (ख) छातीकी दोनों ओरकी बनावट ठीक-ठीक है या नहीं ; (ग) अथवा वक्षका रोग घटता है या बढ़ता है।

यह माप पाँच प्रकारसे होती है :—

१। ऊर्द्ध-स्थानीय (Vertical)—अक्षकसे लेकर समूची छातीकी नीचेतक माप ले लेना।

२। वृत्ताकार माप (Circular)—इसमें छातीके कई स्थानोंकी चारों ओरकी घेराई मापी जाती है।

३। अर्द्धवृत्ताकार (Semi-circular)—इसमें वक्ष अर्द्ध गोलाकार भावसे मापा जाता है।

४। सम्मुख-पश्चात् (Anterio-posterior)—सामने और पीछेके व्यासकी माप।

५। आड़ी माप (Transverse)—वक्षका आड़े-भावसे मापना। इसके लिये "कैपिलर" नामक यन्त्र मिलता है।

स्वस्थ वक्षकी माप

तन्दुरुस्त मनुष्योंके वक्षकी माप—३२ से ३४ इञ्च रहती है। साधारण साँस लेनेके समय यह माप १ इञ्च बढ़ जाती है। गहरी साँसमें वृत्ताकार माप २ से ३ इञ्चतक बढ़ती है।

साधारण वक्षका सम्मुख पश्चात्-व्यास—७ इञ्च और आड़ा व्यास १० इञ्च रहता है।

परन्तु यह माप सबके लिये समान नहीं रहती। व्यायाम करनेवालोंकी बढ़ जाया करती है तथा फेफड़ेकी कितनी ही बीमारियोंमें भी सम्मुख पश्चाद्-व्यास बढ़ जाया करता है।

इसी तरह फुस्फुसावरक-झिल्लीमें पानी इकट्ठा होने अथवा फेफड़ेके संकोचनमें घट भी जाया करती है।

४। आकर्णन
(Auscultation)

आकर्णनका मतलब है—सुनना। आघातनमें जिस तरह चोट देकर स्पन्दनकी आवाज सुनी जाती है, इसमें भी उसी तरह वक्ष-परीक्षा-यंत्र (Stethoscope) के सहारे वक्ष-गह्वरके भीतरी यंत्रोंकी आवाज सुनी जाती है।

इससे हृदय तथा फेफड़ोंकी आवाजोंकी प्रकृति और नये पैदा हुए शब्दोंका निर्णय किया जाता है।

वक्ष-परीक्षा-यंत्र
(Stethoscope)

इसको वक्ष परीक्षा यन्त्र या आकर्णन-यन्त्र भी कहा जा सकता है। अंगरेजीमें इसे स्टेथास्कोप कहते हैं। यह दो तरहका होता है—एकनला और दुनला। एकनलाकी चाल अब बहुत कम हो गयी है या एक तरहसे है ही नहीं, अब दुनला ही व्यवहृत होता है और इसीसे सुविधा प्राप्त होती है।

यह एक रबरकी नली लगा यन्त्र है। इस चित्रको ऊपरसे नीचेकी ओर देखिये। ऊपर जो केंकड़ेकी टांगकी तरह घूमा हुआ भाग है, वह धातुका होता है, प्राय ये दोनों ही नलियाँ निकेलकी होती हैं। इनके मुँहपर घुंडीकी तरह जो है, यह इयर पीस (Ear piece) अर्थात् कानमें लगानेवाला अंश कहलाता है। ये घुंडियाँ काठ, सींग या हाथी दाँतकी होती हैं। वक्ष परीक्षाके समय ये घुंडियाँ कानमें डाल ली जाती हैं। वक्ष परीक्षा-यन्त्र खरीदते समय यह देखकर खरीदना चाहिये, कि घुंडियाँ कानमें ठीक ठीक बैठती तो हैं, हवा तो नहीं चली जाती है, क्योंकि अगर घुंडी ठीक नहीं बैठी या हवा चली गयी, तो परीक्षा ठीक ठीक न हो सकगी। इस इयर पीसके साथ ही दोनों ओरसे दो रबरकी नलियाँ जुड़ी हुई हैं। इयर पीसके बीचमें चन्द्रमाके आकारका एक अंश रहता है, यहींसे स्टेथास्कोप मुड़ता है। रबरकी नलीसे एक चमकीली चीज और भी फोंफीकी तरह जुड़ी

चित्र नं० १

स्टेथास्कोप

हुई है ; यह चेस्ट-पीस (Chest piece) कहलाता है। यही रोगीके वक्षपर रखकर परीक्षा की जाती है।

यह चेस्ट-पीस ही असल चीज है। यह जितना ही उत्तम होगा, काम भी उतना ही बढ़िया होगा और परीक्षा भी उतनी ही ठीक-ठीक हो सकेगी।

इसके और भी कई नमूने आगे दिये जाते हैं :—
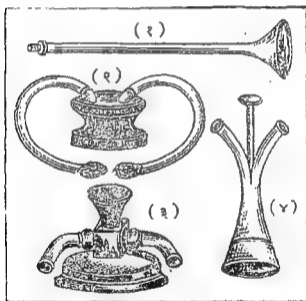
नं० १—ऊपर जो चित्र दिखाया गया है, उसमें नं० १—एक लम्बा चोंगाकी तरह दिखाई देता है। बहुत-सी ऐसी छूत बीमारियाँ हैं, जिनमें बहुत पाससे परीक्षा करना चिकित्सकके लिये खतरनाक होता है। अतएव, सावधान चिकित्सक स्टेथास्कोपमें लगे छोटे चेस्ट-पीसको

खोलकर इसे लगा देते हैं और स्वयं कुछ दूरीपर रहकर ही परीक्षा कर लेते हैं। इसका एक उपयोग पर्दानशीन स्त्रियोंकी वक्ष परीक्षामें भी होता है और कुछ दूर ही रहकर वक्ष परीक्षाका कार्य बहुत मजेमें सम्पन्न हो सकता है।

नं० २—यह भी एक प्रकारका स्टेथास्कोप ही है। इसके चेस्ट पीसमें शब्द वाहक यन्त्र इस ढंगका लगा हुआ है, जो गोल है; यह सब तरहकी छातीपर, पसलियोंपर खूब ठीक चिपककर बैठता है। रबरकी नली और इयर-पीस भी इसमें सम्मिलित है।

नं० ३—इसका चेस्ट पीस भी गोल है। शब्द वाहक यन्त्र बहुत ही उत्तम है तथा दोनों ओर जो हाथकी तरह दिखाई देते हैं, उनमें रबरकी नली लगा दी जाती है। यह इधर-उधर घूम जाता है और जैसा चाहें, वैसा इसे घुमाकर प्रयोग कर सकते हैं।

नं० ४—यह भी चेस्ट पीसका एक नमूना है। ऊपर जो स्टेथास्कोपका चित्र दिखाया गया है, उसमें यही चेस्ट पीस लगा हुआ है। इसके बीचमें जो उठा हुआ स्थान है, उसे डाक्टर अगुलीसे धीरेसे दबाये रहता है, जिसमें सतहसे उसका मुँह ठीक ठीक लगा रहे, जरा भी दरार रहकर हवा न घुस सके।

यही वह यन्त्र है, जिसके सहारे हृदय, गला और कभी-कभी उदरका शब्द भी सुननेमें आता है।

आकर्णनकी क्रिया

आस्कल्टेशन (Auscultation) अर्थात् आकर्णनकी क्रिया एक तरहसे और भी होती है अर्थात् छाती या पीठसे कान लगाकर चिकित्सक भीतरकी आवाज सुनता है। इसे अंगरेजीमें इमिडियेट आसकल्टेशन (Immediate auscultation) कहते हैं।

स्टेथास्कोप लगाकर वक्षकी या पीठकी जो परीक्षा की जाती है, उसे मिडियेट आस्कल्टेशन (Mediate auscultation) कहते हैं।

एक प्रकारका आकर्णन और भी होता है। चिकित्सक न तो परीक्षावाली जगहपर कान लगाता है और न स्टेथास्कोपका ही प्रयोग करता है। वह केवल रोगीके पास जाकर खड़ा हो जाता है और जो आवाज उसकी साँस आदिसे निकलती है, उसे सुनता है। इसे "अतिरिक्त आकर्णन" (Extra auscultation) कहते हैं।

परन्तु इन तीनों प्रकारोंके आकर्णनोंमें स्टेथास्कोपके द्वारा आकर्णनकी प्रथा विशेष प्रचलित है और परीक्षाके लिये वही उपयुक्त भी है।

आकर्णनकी प्रणाली

(Method of Auscultation)

१। रोगीके अंगकी जिस स्थानकी परीक्षा करनी हो, वह स्थान जहाँतक खुला और वस्त्र-रहित हो, उतना ही अच्छा है। स्त्रियोंके सम्बन्धमें लाचारीसे वस्त्राच्छादित अवस्थामें ही परीक्षा करनी पड़ती है।

२। रोगीको बैठाकर और यदि सम्भव न हो, तो लेटाकर परीक्षा करनी चाहिये।

३। यह परीक्षा अक्षक और कंठास्थिके स्थानसे आरम्भ करनी चाहिये और स्टेथास्कोपका वक्षपर रखनेवाला अंश खूब अच्छी तरह, सावधानतापूर्वक लगाते हुए, एक ओरके वक्षस्थलके नीचेवाले भागतककी परीक्षा करनी चाहिये ; एक ओरकी परीक्षा हो जानेके बाद दूसरी ओरकी आरम्भ करनी चाहिये।

४। अगर वक्षके किसी समान स्थानकी आवाजकी आपसमें तुलना करनी हो, तो दाहिने वक्षके जिस स्थानकी परीक्षा की गयी हो, तुरन्त

यायीं ओरके वक्षके उसी स्थानकी परीक्षाकर शब्दका अन्तर निर्णय कर लेना चाहिये।

५। इसी तरह पीठकी ओर भी दोनों ओरकी परीक्षा करनी चाहिये।

६। यदि रोगी किसी जगह तकलीफ, दर्द आदि बताये, तो उस स्थानकी दुबारा परीक्षा कर, दूसरी ओरकी परीक्षा करते हुए उस स्थानके शब्दका प्रभेद जान रखना चाहिये।

७। रोगीको इस समय सरल भावसे रखना चाहिये, अकड़ा जैसे नहीं रहे, नहीं तो आवाजमें फर्क आ जायगा और परीक्षाका मतलब हल न हो सकेगा।

८। अगर वक्षस्थलमें बहुत केश हों तो, या तो उन्हें साफ कर देना चाहिये या तर कर देना चाहिये, जिसमें उनकी वजहसे आवाज आनेमें बाधा न पड़े।

९। यदि स्वाभाविक श्वास-प्रश्वासकी भरपूर आवाज न मिले, तो रोगीको जोरसे साँस लेने और छोड़नेको कहना चाहिये।

१०। एक बार नाकसे श्वास-प्रश्वासकी क्रिया कराकर और फिर मुँहसे क्रिया कराकर परीक्षा करनी चाहिये।

११। परीक्षा करते समय चिकित्सक तथा रोगी दोनोंको ही स्वस्थ चित्त रहना चाहिये।

१२। फेफड़ेकी परीक्षाके समय श्वास-प्रश्वासका शब्द और गिनती गिनवाकर शब्दकी परीक्षा करनी चाहिये।

१३। हृदयकी परीक्षा करते समय हृत्पिण्डके नीचे यन्त्र लगाकर, उसकी चाल, उसकी आवाज प्रभृतिकी परीक्षा करनी चाहिये।

वक्षगह्वरसे आयी हुई आवाजें

वक्षगह्वरसे आयी हुई आवाजें साधारणतः दो प्रकारकी होती हैं :—

१। एक तो वे जो हृद्‌यंत्रकी चालके कारण उत्पन्न होती है। इनको हृद्-शब्द (sound of the heart) कहते हैं। इनके दो भेद हैं :—सिस्टोल (systole—संकोचन शब्द) और डायस्टोल (diastole—प्रसारण शब्द)। इसके अलावा, जब हृद्‌यंत्रमें किसी तरहका विकार या गड़बड़ी हो जाती है, तो एक प्रकारकी आरी चलने या जाँता चलने अथवा केश मलने-जैसी आवाज आती है। इसको हृत्पिण्डका मरमर शब्द (murmur morbid sound) कहते हैं।

२। दूसरी आवाज श्वास-प्रश्वास यंत्रोंकी होती है। इसका श्वास-प्रश्वाससे उत्पन्न शब्द (respiratory sound या respiratory murmur) कहते हैं।

हृत्पिण्ड तथा श्वास-प्रश्वास यंत्रोंकी इन आवाजोंके बहुतसे भेद हैं। रोगोंके अनुसार ये आवाजें बदला करती हैं। इनका पूरा विवरण उन-उन संस्थानोंके अध्यायमें दिया गया है। जैसे :—

हृत्पिण्डके शब्दोंमें—

(क) हृद्-शब्द (Sound of the heart)।

(ख) एण्डोकार्डियल मरमर (Endocardial murmur)—हृत्पिण्ड या हृत्पिण्डकी धमनीमें होनेवाला शब्द (इसके कई भेद हैं)।

(ग) एक्सोकार्डियल मरमर (Exocardial murmur)—हृत्पिण्ड या हृत्पिण्डकी किसी धमनीके बाहरका मरमर शब्द।

(घ) हेमिक मरमर (Hæmic murmur)—इसमें हृत्-पिंडकी दूसरी आवाजके साथ कपाटके शब्दके बदले फुस्फुसीया-धमनीका शब्द मिलता है।

(ङ) परिकार्डियल फ्रिक्शन साउण्ड (Pericardial friction sound)—हृदावरण (pericardia) में एक तरहकी रगड़-जैसी आवाज मिलती है।

(च) प्लुरो पेरिकार्डियल साउण्ड (Pleuro-pericardial sound)—फुस्फुसावरण प्रदाह होकर हृद्‌पिण्डपर दबावके कारण यह आवाज होती है।

श्वास-यंत्रके शब्दोंमें—

(क) वेसिक्युलर मरमर (Vesicular murmur)—साँस लेनेका स्वाभाविक शब्द।

(ख) हार्श ब्रीदिंग (Harsh breathing)—कर्कश स्वर।

(ग) जर्की ब्रीदिंग (Jerky breathing)—इसमें साँस लेनेके समय साँसकी आवाज नहीं मिलती।

(घ) ब्राँकियल ब्रीदिंग (Bronchial breathing)—कण्ठ-नली, वायुनली और श्वासनलीका शब्द।

(ङ) ट्युबुलर ब्रीदिंग (Tubular breathing)—जोरकी फुत्कारकी आवाज। ब्राँकियल ब्रीदिंगकी अपेक्षा यह आवाज ऊँची होती है।

(च) कैवर्नस ब्रीदिंग (Cavernous breathing)—यह एक खोखली सी आवाज है। फेफड़ेमें गह्वर पड़नेपर यह आवाज आती है।

(छ) एम्फोरिक ब्रीदिंग (Amphoric breathing)—इसमें दो तरहकी खोखली सी आवाज आती है। शीशीमें फूँकनेकी तरह आवाज।

(ज) वोकैल रेजानेन्स (Vocal resonance)—बोलनेकी आवाज।

(क) ऐडवेन्टिशस साउण्ड (Adventitious sound)— संयुक्त आवाजें। यह ४ प्रकारकी हैः—(१) रांकाई (Rhonchi); (२) स्ट्रिडर (stridor); (३) राल्स (rales); (४) फ्रिक्शन साउण्ड (friction sound)।

५। आलोड़न

(Succussion)

पहले जमानेमें रोगीके कन्धे पकड़, उनको हिलाकर, इस बातकी परीक्षा की जाती थी, कि इसके वक्षमें पानी तो नहीं हो गया है। इस समय परीक्षा करनेवाला रोगीकी छाती या पीठसे कान लगाये रहता था। अब यह चाल बिल्कुल उठ गयी है। इस तरह झोंकसे हिला देनेपर रोगीके वक्षके भीतरसे एक तरहकी ऐसी आवाज आती है, जिस तरह किसी घड़ेमें थोड़ा पानी रखकर उसे हिलानेसे पानी छिलकनेकी आवाज आती है। इस आवाजको स्प्लेशिंग साउण्ड (Splashing sound) कहते हैं।

तीसरा अध्याय

रक्तवाहक सस्थानमें प्रधान रूपसे दो यन्त्र आते हैं :—

(१) हृत्पिण्ड (Heart)।
(२) रक्तवाहिनियाँ (Blood vessels)।

हृत्पिण्ड
(Heart)

वक्ष गह्वरके भीतर, बायीं ओर यह एक नाशपातीकी तरहके रूपका यन्त्र है। मुट्ठी बांध लेनेपर जितनी बड़ी मुट्ठी होती है, यह उतना ही बड़ा है। वक्षगह्वरके भीतर वक्षोस्थिके पीछेकी ओर और कुछ बायें हटकर दोनों फेफड़ोंके बीचमें यह रहता है। इसका ऊपरी भाग निचलेकी अपेक्षा कुछ ज्यादा चौड़ा होता है। वक्षगह्वरमें सबसे ऊँचाईपर इसका जो अग्र रहता है, वह ऊर्द्ध ग्राहक कोष्ठ (left auricle) है, यह दूसरी बायीं उपपर्शुकातक रहता है।

दो पर्दोंवाली थैलीकी तरह इसपर एक झिल्लीदार आवरण चढ़ा रहता है, इसे हृदावरण (pericardium) कहते हैं। यह एक बहुत पतली झिल्लीका पर्दा सा रहता है। इससे एक तरहका रस बहा करता है, इससे हृत्पिण्ड हमेशा तर रहा करता है।

हृत्-शिखर (Apex of the heart)—हृत्पिण्डका सामनेवाला, जो शिरा बायीं ओर कुछ झुका रहता है, उसे हृत्-शिखर कहते हैं।

हृत्-तलदेश (Base of the heart)—यह हृत्पिंडका ऊपर-वाला चौथा स्थान है और पीछे तथा दाहिनी ओर झुका रहता है ; इसे हृत्पिंडका तलदेश कहते हैं।

प्रकोष्ठ (Chamber)—हृत्पिंडका भीतरी भाग खोखला होता है। सूक्ष्म मांस-पेशीकी झिल्लियों द्वारा यह चार भागोंमें विभक्त रहता है। इन्हें कोष्ठ या प्रकोष्ठ (chamber) कहते हैं। क्रमसे ऊपर, नीचे और बायें तथा दाहिने आस-पास चार प्रकोष्ठ होते हैं। ऊपरके दोनों गह्वर (जो दाहिने-बायें आस-पास हैं), उन्हें ऊर्द्ध-कोष्ठ या ग्राहक-कोष्ठ कहते हैं। इन्हें दाहिना ग्राहक कोष्ठ और बायाँ ग्राहक-कोष्ठ कहते हैं तथा नीचेके दोनों गह्वरोंको रक्त-प्रवाही स्थाली या क्षेपक-कोष्ठ कहते हैं। इस तरह दो ग्राहक-कोष्ठ और दो क्षेपक-कोष्ठ होते हैं।

चित्र नं० ४
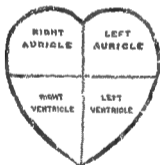
इनमें एक ग्राहक और एक क्षेपक-कोष्ठ दाहिने और एक-एक बायें रहते हैं।

दाहिना ग्राहक-कोष्ठ (Right auricle or atrium)—इसका अधिक अंश दाहिनी ओर रहता है। यह वक्षोस्थिकी दाहिनी

सीमाको पार कर जाता है और इसका किनारा एक टेढ़ी लकीर द्वारा जाना जा सकता है। जो तीसरी और सातवीं वक्षोस्थि और उप-पर्शुकाके सन्धि-स्थानपर मिल जाता है तथा वक्षोस्थिके करीब १ इञ्च स्थानतक पहुँच जाता है।

चित्र नं० ५
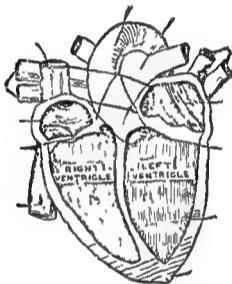
दाहिना क्षेपक कोष्ठ (Right ventricle) बायां क्षेपक कोष्ठ (Left ventricle)

दाहिना क्षेपक-कोष्ठ (Right ventricle)—यह हृदयका अधिकांश भाग दखल किये रहता है। इसकी निम्न-सीमा सातवीं दाहिनी वक्षोस्थि और पञ्जरास्थिके सन्धि स्थानसे लेकर हृत्-शिखरतक पहुँचा रहता है।

बायाँ ग्राहक-कोष्ठ (Left auricle)—यह दूसरी उपपशु का-तक फैला रहता है।

बायाँ क्षेपक-कोष्ठ (Left ventricle)—यह एक पतली लकीरकी तरह सामनेकी तरफ मालूम होता है। चौड़ाई मुश्किलसे ½ इञ्च रहती है।

हृद्कपाट
(Valve)

ऊपरवाले हृद्कोष्ठ ग्राहक-कोष्ठसे क्षेपक-कोष्ठमें रक्त आनेके लिये हरेक ओर एक-एक छिद्र है। इन छेदोंमें एक-एक कपाट (valve) रहता है ; ये कपाट सिर्फ एक तरफ ही खुलते हैं और खुलते भी इस तरहसे हैं, कि ऊपरी ग्राहक-कोष्ठसे रक्त क्षेपक-कोष्ठमें ही आ सकता है। यह लौटकर क्षेपक-कोष्ठसे ग्राहक-कोष्ठमें नहीं जा सकता। रक्त आते ही यह कपाट आप-से-आप बन्द हो जाता है।

दाहिनी तरफके द्वारमें तीन कपाट हैं। इसलिये, इसका नाम त्रिकपाट (Tricuspid valve) है। बाईं ओरके द्वारमें दो कपाट हैं। इसलिये, इसका नाम—द्वि-कपाट (Bicuspid valve) है। दाहिनी ओरके दोनों प्रकोष्ठोंसे बायीं ओरके दोनों प्रकोष्ठोंका रक्त दूसरी ओरके प्रकोष्ठोंमें प्रवेश नहीं कर सकता।

इसके अलावा, महाधमनी और फुस्फुसीया धमनी, इन दोनोंके भी कपाट होते हैं।

महाधमनीके मुँहपर जो कपाट रहता है, उसे महाधमनी कपाट (Aortic valve) कहते हैं। यह अर्द्धचन्द्रके आकारका होता है ; इसलिये, इसको अर्द्धचन्द्राकार कपाट (Semilunar valve) भी कहते हैं।

फुस्फुसीया धमनी-कपाट (Pulmonary valve)—फुस्फुसीया धमनीके मुँहपर जो कपाट है, उसे फुस्फुसीया धमनी कपाट कहते हैं। यह भी अर्द्ध-चन्द्राकार भावसे ही रहता है। यह महाधमनी कपाटके ऊपर अर्थात् बायी ओरकी तीसरी पर्शुका और वक्षोस्थिक संयोग स्थानपर ऊपरकी ओर है।

शरीरके सब स्थानोंमें रक्त पहुँचाने और ले आनेवाला प्रधान यन्त्र हृत्पिण्ड ही है। इसी स्थानसे साफ शोधित रक्त धमनियोंके सहारे शरीरके सब स्थानोंमें पहुँचता है और शिराओंके द्वारा सब दूषित या अशोधित रक्त हृत्पिण्डमें साफ होनेके लिये आ पहुँचता है।

हृद्पिण्डकी धमनियाँ
(Arteries of the heart)

हृद्पिण्डकी सबसे प्रधान धमनीका नाम **महाधमनी** (Aorta) है। यह क्षेपक कोष्ठसे निकलकर कितनी ही भागोंमें बँटती हुई और सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती हुई शरीरके सब स्थानोंमें बँट गई है।

यह लगभग एक इञ्च मोटी नली है। यह हृद्पिण्डके बायें गह्वरके ऊपरी अंशसे निकलकर थोड़ा ऊपर जाकर फिर नीचे उतर आती है।

इस महाधमनीके तीन भाग हैं —

१। **ऊर्ध्वगा महाधमनी** (Ascending aorta)—यह वह अंश है, जो ऊपर जाता है।

२। **अनुप्रस्थ महाधमनी** (Transverse aorta)—यह महाधमनीका वह भाग है, जहाँ वह आड़ी होकर जाती है। यह हिस्सा देखनेमें एक महराबकी तरह मालूम होता है। अतएव, इसे महाधमनीका महराब (aortic arch) कहते हैं।

३। **अधोगामिनी महाधमनी** (Descending aorta)—यह महाधमनीका वह हिस्सा है, जो मेहरावदाली जगहसे नीचेकी ओर उतरता है।

इनके अलावा, इस महाधमनीके दो भेद और भी हो गये हैं। इस महाधमनीका जो भाग वक्ष-गह्वरमें चला गया है, उसका नाम **वक्ष-गह्वरस्थ महाधमनी** (Thoracic aorta) पड़ा है और जो भाग उदरमें चला गया है, उसे **औदरिक महाधमनी** (Abdominal aorta) कहते हैं।

चित्र नं० ६
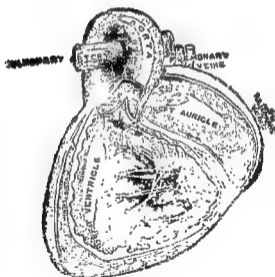
इसमें महाधमनी, फुस्फुसीया धमनी, फुस्फुसीया शिरा तथा वाम ग्राहक और क्षेपक-कोष्ठ दिखाया है।

ऊपर जिस महराबका वर्णन कर चुके हैं, उसके पीछेसे दो धमनियाँ और भी निकली हैं। इनका काम गला और कंठनलीमें रक्त पहुँचाना है। ये गला और कंठनलीके दोनों ओरसे माथेकी ओर चली गयी हैं, इन्हें शिराग्रीवा धमनी (Carotid artery) कहते हैं।

फुस्फुसीया धमनी (Pulmonary artery)—हृद्पिण्डके दाहिने क्षेपक-कोष्ठसे एक नली निकलती है। इसकी दो शाखायें हो जाती हैं, जिनमें एक दाहिनी ओरके फेफड़ेमें और दूसरी बायीं ओरके फेफड़ेमें चली जाती है। ये ही फुस्फुसीया धमनी हैं। जहाँ इस धमनीका आरम्भ होता है, वहाँ उसके भीतर तीन अर्द्ध-चन्द्राकार किवाड़ोंसे बना एक कपाट रहता है। इस कपाटकी वजहसे रक्त कोष्ठसे धमनीमें तो जा सकता है पर उलटा नहीं जा सकता।

हृत्पिंडकी शिराएँ
(Veins of the heart)

ऊर्ध्व-महाशिरा (Superior Venacava)—दाहिने ग्राहक-कोष्ठसे दो नलियाँ निकलती हैं। एक ऊपरी भागमें और दूसरी निचले भागमें—ये दो शिराएँ हैं। इनमें ऊपरवाली ऊर्ध्व-महाशिरा कहलाती है; यह अशुद्ध रक्तको शिर-ऊर्ध्व शाखाएँ तथा वक्षसे एकत्र कर लाती है।

निम्न-महाशिरा (Inferior Venacava)—नीचेवाले भागमें जो मोटी शिरा रहती है, वह निम्न महाशिरा कहलाती है। यह शरीरके उदर और निम्न भागोंसे रक्त इकट्ठा कर लाती है।

फुस्फुसीया शिराएँ (Pulmonary veins)—बायें क्षेपक-कोष्ठसे चार नलियाँ निकलती हैं, इनमें दो दाहिने तथा दो बायें फेफड़ेमें जाती हैं; इन्हें फुस्फुसीया-शिराएँ कहते हैं।

अक्षकाधोवर्त्तिनी शिरा—दो शिराएँ बगलके दोनों ओरसे निकलकर अक्षकके नीचे होती हुई **गम्भीर शिरोधीया** (internal jugular) के साथ मिल गई है, इन्हें अक्षकाधोवर्त्तिनी शिरा कहते हैं।

शरीरमें रक्त-संचालन

(Circulation of blood)

शरीरमें रक्त-संचालनकी क्रिया कुछ अद्भुत ही होती हैं। शरीरके सब अंशोंको रक्त ही जीवित और पुष्ट रखता है। शरीरका जो बराबर क्षय होता रहता है, उसकी पूर्त्ति रक्तसे ही होती है। रक्त ही शरीरसे दूषित और निरर्थक पदार्थोंको निकाल देता है।

हृदयका कार्य—हृद्‌यंत्रका प्रधान काम शरीरमें सब जगह साफ रक्त पहुँचाना और खराब तथा दूषित रक्तको फेफड़ेमें पहुँचाकर उसका शोधन करा देना। यह क्रिया हृत्पिण्ड और फेफड़े—इन दोनों सहारे होती है। हृत्पिंड रक्त भेजता है, फेफड़ा उसे साफ कर देता है।

रक्त-संचालन—हृत्पिंड पम्पकी तरहका एक यंत्र है ; जिस समय यह वेगसे सिकुड़ता है, तो शुद्ध रक्त जोरसे शरीरकी धमनियोंमें जाता है। निर्मल रक्त हृत्पिंडसे निकलकर शरीरके सब अंशोंको धोता हुआ हृत्पिंडमें लौट आता है, उस दूषित रक्तका शोधन होकर वह फिर हृत्पिण्डसे निकलता है और दूषित होकर फिर वहाँ प्रवेश करता है। रक्त जिस समय हृत्पिण्डसे निकलता है, उस समय उसका रंग चमकीला लाल रहता है, जब हृत्पिण्डमें लौटता है, उस समय दूषित पदार्थोंका संयोग हो जानेके कारण वह गदला हो जाता है अर्थात् उसका रंग कुछ काला या बैंगनीपन लिये रहता है।

शिराओंका कार्य—गदले रक्तको संचय कर लाना और हृत्पिण्डमें सफाईके लिये पहुँचा देना।

धमनीका कार्य—शुद्ध रक्तको शरीरभरमें फैला देना।

रक्त-संचालनकी क्रिया—शरीरके ऊपरी भागका सब दूषित रक्त ऊर्ध्व-महाशिरा (superior venacava) द्वारा और निचले भागका सब दूषित रक्त अधोगा महाशिरा (inferior venacava) द्वारा ऊपरी ग्राहक कोष्ठ (right auricle) में जाता है। जब दाहिना ग्राहक-कोष्ठ इस तरह दूषित रक्तसे भर जाता है, तब यह सिकुड़ने लगता है और उसके सिकुड़नेपर उसका निचला त्रि-कपाट (tricuspid valve) द्वारपर दबाव पड़ता है। दबावसे यह दरवाजा खुलता है और समूचा रक्त दाहिने क्षेपक-कोष्ठमें जाता है। अब यह त्रिकपाट-द्वार बन्द हो जाता है। अतएव, रक्त ऊपरवाले ग्राहक-कोष्ठमें लौटकर नहीं जा सकता। अब दबाव पड़नेके कारण रक्त "बृहत् फुस्फुसीया-धमनी (pulmonary artery)" में प्रवेश करता है और यहाँसे वह फुस्फुस या फेफड़ेमें साफ होनेके लिये चला जाता है।

शुद्ध रक्तका दौरान—रक्त फेफड़ेमें शुद्ध होकर चार फुस्फुसीया शिराओं (pulmonary vains) में जाता है। यह खूनसे भरते ही सिकुड़ने लगता है। अब खूनके दबावसे बायें हृदकोष्ठका नीचेवाला द्वि-कपाट खुल जाता है और रक्त तुरन्त बायें क्षेपक-कोष्ठमें गिरने लगता है। खूनके भरते ही बायाँ क्षेपक-कोष्ठ सिकुड़ने लगता है। इस समय ऊपरवाले द्वि-कपाटमें दबाव पड़नेके कारण वह बन्द हो जाता है। अतएव, रक्त ऊपरवाले प्रकोष्ठमें लौटकर नहीं जा सकता। जब दबावके कारण यह रक्त महाधमनी (aorta) की राहसे बाहर निकलता है। इस महाधमनीकी शाखायें शरीरके सभी भागोंमें फैली हैं। अतएव, रक्त सब अनगिनती नलियोंमें फैलकर, सूक्ष्म नलियाँ अर्थात् केशिकाओं (capillaries) में जाता है और इस तरह समस्त शरीरमें व्याप्त हो जाता है। इन केशिकाओंके ऊपरका चमड़ा इतना पतला रहता है, कि इस चमड़ेके भीतरसे ही रक्त क्षय हुई मांस-पेशियोंका नया मांस बनानेके

लिये उपादान दे देता है और स्वयं क्षय हुए मांस आदिसे भरी चीजें ले लेता है। इस तरह यह रक्त मैला हो जाता है। यह रक्त केशिकाओंसे शिराओंमें और शिराओंसे दोनों महाशिराओं (superior and inferior venacava) में होता हुआ निचले ग्राहक-कोष्ठमें चला आता है और वहाँसे फेफड़ोंमें जाकर साफ हो जाता है। फेफड़ेमें साफ होकर फिर हृत्पिण्डके बायीं ओर प्रवेश करता है। इस शरीरके भीतर यह क्रिया होती रहती है।

रक्त-प्रवाह जारी रखनेवाले यंत्र—ये हृत्-कोष्ठ हैं, हृत्पिण्डकी दोनों ग्राहक-कोष्ठ एक साथ संकुचित होकर खूनको क्षेपक-कोष्ठमें दे देते हैं। इस समय दोनों क्षेपक-कोष्ठ (ventricle) फैलकर रक्तको आने देते हैं। इसके बाद दोनों क्षेपक-कोष्ठ सिकुड़कर रक्तको फेफड़ेमें तथा अन्य स्थानोंमें भेजते हैं। उस समय दोनों ग्राहक-कोष्ठ फैलकर फेफड़े तथा अन्य स्थानोंसे आये रक्तको आने देते हैं। होता यह है, कि जब ऊपरके कोष्ठ फैलते हैं, तब नीचेवाले सिकुड़ते हैं और जब नीचेवाले सिकुड़ते हैं, तब ऊपरवाले फैलते हैं। यह हृत्पिण्डका सिकुड़ना (systole) और फैलना (diastole) ही है, जो रक्तको सारे शरीरमें फैलाता है। इस समय जब ये हृत्कोष्ठ सिकुड़ते और फैलते हैं, तब रक्तका प्रवाह बहुत झोंकसे धमनियोंमें जाता है। यही **नाड़ीका स्पन्दन** है और इसी संकोचन-प्रसारणके समय हृत्पिण्डसे एक प्रकारकी आवाज निकलती है।

वक्षमें हृद्-यंत्रोंके स्थान

हृत्पिंड (Heart)—यह भीतरी वक्षमें वक्षोस्थिके बायीं ओर रहता है। वक्षोस्थिके बायीं ओर इसका दो-तिहाई भाग और दाहिनी ओर एक-तिहाई रहता है। ऊपर दूसरी उपपर्शुकाके बीचका स्थान

(inter-costal space) से नीचे बायीं ओरकी पाँचवी पसलीके बीचकी जगहतक फैला रहता है। इसकी तली या तलदेश (base)—यह दूसरी पसलीके नीचे और वक्षोस्थिके दाहिने आधा इञ्च और बाहर एक इञ्चतक रहता है। हृत्-शिखर—बायें स्तनके एक इञ्च नीचे रहता है अर्थात् बायीं ओरकी पाँचवीं पसलीके बीचकी जगहसे बायीं ओर साढ़े तीन इञ्चकी दूरीपर रहता है।

बायाँ ग्राहक-कोष्ठ (Left auricle)—यह दूसरी बायीं उप-पर्शुका (costal cartilage) तक फैला रहता है। इसका अधिक भाग पीछेकी ओर रहता है, हृद्गह्वरका पिछला भाग घेरे रहता है।

दाहिना ग्राहक-कोष्ठ (Right auricle)—यह दाहिनी ओर रहता है। यह वक्षोस्थिके दाहिनी ओरतक फैला रहता है और वक्षोस्थिसे एक इञ्च दाहिने फैला रहता है।

बायाँ क्षेपक-कोष्ठ (Left ventricle)—सामनेकी ओर आधा इञ्च चौड़ा मालूम होता है, इसकी बाहरी रेखा बायीं ओर हृत्पिण्डको पूरा करती है, जहाँ इसके किनारे महराब सा हो जाता है। यह हृत्-शिखरसे लेकर दूसरी बायीं पर्शुका-मध्यस्थ स्थानतक रहता है।

दो फेफड़े (Lungs)—यह भी वक्षमें दोनों ओर रहकर रक्त-शोधनमें सहायता करते हैं।

यकृत और प्लीहा—ये भी वक्षका कुछ स्थान घेरे रहते हैं।

हृदग्र-प्रदेश (Precordial region)—वक्षके सामनेवाला वह भाग, जो हृत्पिण्डके ऊपर रहता है, हृदग्र प्रदेश कहलाता है।

पर्शुका या पसलियाँ (Ribs)—इसका वर्णन पहले हो चुका है।

पर्शुका-मध्यस्थ स्थान (Inter-costal space)—यह दो पसलियोंके बीचकी जगहें हैं।

बाहरी भागकी सीमा-रेखाएँ
(Surface lines)

बाहरी भागकी इन सीमा-रेखाओंसे रोग निर्णयमें बहुत सहारा मिलता है। शरीरकी मध्य सीधी-रेखासे किसी स्थानकी दूरी निर्णय करनेके लिये बराबर कुछ लम्ब-रेखाएँ मान ली गयी हैं। वे निम्न-लिखित हैं :—

वक्ष-मध्य-रेखा (Mid-sternal line)—वक्षोस्थिके ऊपरी सिरेके बीचसे नीचेकी ओर अगर एक सरल रेखा खींची जाये, तो उसे वक्ष-मध्य-रेखा कहेंगे।

पार्श्विक-वक्ष-रेखा (Lateral sternal line)—वक्षोस्थिके ऊपरी सिरेके दोनों भागोंसे अगर नीचेकी ओर लम्बे-लम्बे दो सरल रेखाएँ खींची जायें, तो उसे पार्श्विक वक्ष-रेखा कहते हैं।

स्तन-रेखा (Mammary lines)—दोनों ओरके अक्षक (clavicle) के बीचसे स्तनपर होती हुई नीचेकी ओर लम्बे-लम्ब दो सरल रेखायें अगर खींची जायें, तो उन्हें ममरी लाइन्स या स्तन-रेखा कहते हैं।

पैरेस्टर्नल लाइन्स (Parasternal lines)—पार्श्विक वक्ष-रेखाएँ और स्तन-रेखाके बीचकी जगहसे दोनों ओर बराबर दो रेखाएँ अगर नीचेकी ओर खींच दी जायें, तो उन्हें पेरेस्टर्नल लाइन्स कहते हैं।

सम्मुख कान्थिक रेखाएँ (Anterior axillary lines)—कान्थिक रेखाका अर्थ है—बगलकी रेखा। दोनों ओरके बगलमें, सामनेकी तरफ, ऊपरसे नीचे लम्बे-लम्ब अगर रेखाएँ खींची जायें, तो उन्हें सम्मुख कान्थिक रेखाएँ कहेंगे।

मध्य-काक्षिक रेखाएँ (Mid-axillary lines)—बगलोंके मध्यकी जगहसे, ऊपरसे नीचेकी ओर अगर लम्बे लम्ब रेखाएँ खींची जायँ, तो उसे मध्य काक्षिक रेखाएँ कहते हैं।

पश्चात् काक्षिक रेखाएँ (Posterior axillary lines)—दोनों ओरकी बगलोंके पीछेकी ओर ऊपरसे नीचे लम्बे लम्ब जो रेखाएँ खींची जायँ, उसे पश्चात् काक्षिक रेखाएँ कहते हैं।

स्कन्धास्थि-सम्बन्धी रेखाएँ (Scapular lines)—पीठके दोनों पार्श्वोंकी स्कन्धास्थिके नीचेवाले कोनेसे नीचेकी ओर लम्बे-लम्ब अगर दो रेखाएँ खींची जायँ, तो उन्हें स्कन्धास्थि सम्बन्धी रेखाएँ कहते हैं।

चौथा अध्याय

हृद्-यंत्रोंकी परीक्षा

हृत्पिण्डकी परीक्षामें साधारणतः दर्शन, स्पर्शन, आघातन और आकर्णन—इन चारों ही प्रक्रियाओंका प्रयोग होता है।

१। दर्शन
(Inspection)

हृत्पिण्डका दर्शनके—अन्तर्गत प्रधानतः तीन बात आती हैं :—

(१) आकार—
- (क) हृदय-प्रदेशका आकार—फूलना या समतल हो जाना।
- (ख) उसके आस-पासके स्थानोंकी अवस्था—(खासकर सूजन)।

(२) गति—

हृदय-प्रदेशमें—हृत्-शिखरका स्पन्दन।
" " स्थानान्तरित स्पन्दन।
" " स्थानिक खिंचाव।
हृदय-प्रदेशके बाहर—गर्दनकी जड़में स्पन्दन।
वक्ष-गह्वरमें स्पन्दन।
उदरोर्द्ध-प्रदेशमें स्पन्दन।

(३) धमनियोंका प्रसारण।

दर्शनके समय रोगीको रोशनीवाले स्थानमें, पहले खड़ाकर या बैठाकर परीक्षा करनी चाहिये और फिर पीठके बल लेटाकर परीक्षकको रोशनीकी रुकावट बचाते हुए उसके सामने रहकर परीक्षा करनी चाहिये। इस अवस्थामें परीक्षक सिरहाने बैठकर और रोगीकी छातीके तरफ अपना माथा झुकाकर भी परीक्षा कर सकता है। इसमें सुविधा भी होती है। नीचे लिखी बातोंपर इस समय ध्यान देना चाहिये :—

(क) हृदग्र-प्रदेशका आकार (The space of the precordia)।

(ख) हृदग्र-प्रदेशके स्पन्दन।

(ग) हृदग्र-प्रदेशके बाहरके स्थानोंमें सूजन या स्पन्दन, वह चाहे गर्दनकी जड़में हो या वक्षके सामनेवाले भागमें हो या उदरोर्द्ध-प्रदेश (epigastrium) में हो।

हृदग्र-प्रदेशका आकार—स्वस्थावस्थामें वक्ष सुडौल रहता है। बायें-दाहिनेका स्थान समान भावसे उठा रहता है तथा बायीं ओर ज्यादा ऊँचाई या सूजनकी तरह नहीं रहती।

यदि हृदग्र-प्रदेशमें उच्चता दिखाई दे, तो यह स्मरण रखना चाहिये कि हृद्-रोगके अलावा अन्य कारणोंसे भी इसमें ऊँचाई पैदा हो जा सकती है। साथ ही यह भी याद रखना चाहिये, कि इस हृदग्र-प्रदेशकी सूजनके साथ कोई भयकर हृद्-रोग तभी रह सकता है, यदि रोगीके बचपनसे ही हड्डियोंका पूर्ण विकास नहीं हुआ हो।

अगर सूजन या ऊँचाई दिखाई दे, तो तुरन्त देखना चाहिये कि पसलियोंपर आक्रमण हुआ है या नहीं या सिर्फ पसलियोंसे बीचकी जगहपर ही रोगका हमला हुआ है। इसके अलावा, **मेरुदण्डका टेढ़ापन, फोड़ा, वक्ष-गह्वरके यन्त्रोंकी रोगात्मक अवस्था, जैसे— फेफड़ेका कैंसर, हृदावरणमें रस-स्राव, हृदावरणमें रस-संचय, हृद्-वृद्धि** इत्यादि कारणोंसे भी हो सकता है।

हृदग्र-प्रदेशकी समतलता (Flatening of the precordia)—जन्मका ही यह ऐसा हो सकता है या पहलेके **हृदावरण-प्रदाह**के कारण भी ऐसा हो जा सकता है या **फेफड़ेका संकोचन** (retraction of the lung) की वजहसे और कितने ही प्रकारके **स्थवसायिक** कार्योंके कारण भी हृदग्र-प्रदेश इस तरह समतल हो जाता है।

हृत्-शिखरका स्पन्दन (Apex-beat)—श्वास-प्रश्वासकी गतिके कारण तो हृत्प्रदेशमें स्पन्दन होता ही है, परन्तु इसके अलावा प्रत्येक श्वास-प्रश्वासके समय हृदग्र-प्रदेशके सबसे नीचेवाले और एकदम बायें भागमें तीन-चार बार स्पन्दन होता है ; इसीसे इसको **हृत्-शिखरका स्पन्दन** कहते हैं।

स्वस्थावस्थामें यह स्पन्दन पाँचवीं पशुकाके मध्यके स्थानपर होता है। यह केवल एक इञ्चभर स्थानमें होता है, बायीं पैरेस्टरनल लाइनपर तथा बायीं स्तन-रेखाके भीतरकी ओर होता है।

खूब स्वस्थावस्थामें यदि वक्ष-प्राचीर (wall of the chest) बहुत मोटी हो और हृत्-शिखर किसी पसलीके पीछे हो, तो यह स्पन्दन न दिखाई देगा ; पर यदि यह स्पन्दन न दिखाई दे, तो यह कदापि न समझ लेना चाहिये, कि कोई रोग ही हुआ है, पर यह अवश्य स्मरण रखना चाहिये, कि यह कलेजेकी कमजोरीकी निशानी है। यह स्पन्दन जब नहीं मालूम होता, तो एक प्रकारका और भी अधिक विस्तृत स्पन्दन हृदग्र-प्रदेशके बीचवाले भागमें मालूम होता है। यह तब होता है, जब दाहिना ग्राहक-कोष्ठ ज्यादा फैल जाता है तथा हृत्-शिखरको वक्ष-प्राचीरसे दूर फेंक देता है अथवा जब ऐसी अवस्था आ पहुँचती है, कि हृदावरकका रस-स्राव (pericardial effusion) हृत्पिण्डको वक्ष-गह्वरके सम्मुख भागसे अलग हटा देता है।

जोरदार स्पन्दन (Forcible pulsation)—(क) यदि हृत्पिण्डकी क्रिया उत्तेजित हो जाती है, तो यह हृत्-शिखरका स्पन्दन और भी जोरदार मालूम हो सकता है। (ख) अगर वक्ष प्राचीर खूब पतली रहती है। (ग) या जब बायें क्षेपक-कोष्ठकी वृद्धि हो गयी रहती है, तब यह स्पन्दन जोरदार होता है।

ये सब परिवर्त्तन "स्पर्शन" के समय विशेष अनुभवमें आते हैं। अतएव, वहीं इनका वर्णन किया जायगा।

हृत्-शिखरके आघातका स्थान-परिवर्त्तन—तीन प्रकारके रोगियोंमें यह परिवर्त्तन दिखाई देता है।

(क) जन्मगत ही। जहाँ हृत्पिण्ड इस तरह उलट जाता है, कि हृत्शिखर दाहिनी ओर आ पहुँचता है।

(ख) बाह्य कारण (Extrinsic cause)—इसमें आस-पासके कोष्ठोंमें रोगोंके कारण ऐसा हो जाता है, कि हृत्-स्पन्दन अपने स्थानसे हट जाता है। रसस्रावी वक्षावरक-झिल्ली प्रदाह (pleurisy with effusion), **औदरिक अर्बुद** (abdominal tumours) और **फेफड़ेका संकोचन** हो जानेपर यही अवस्था दिखाई देती है। अगर **न्युमो-थोरैक्स** रोग या वक्षावरक-झिल्ली-प्रदाहसे रस स्रावके कारण हृत्पिण्ड दाहिनी ओर हटा दिया जाता है, तो वक्षोस्थिके दाहिनी ओर जो स्पन्दन अनुभवमें आता है, वह हृत्-शिखरका नहीं रहता। हृत्-शिखर तो अक्सर हड्डीके पीछे रहता है। यह स्पन्दन दाहिने क्षेपक-कोष्ठ या ग्राहक-कोष्ठका रहता है।

इसके अलावा, **हृत्पिण्ड या हृदावरणके रोगके** कारण भी हृत्-शिखर अपनी जगहसे हट जाता है। यदि हृत्प्रसारण (dilatation of the heart) हो जाता है, तो हृत्-शिखरकी **धड़कन अधिकतर बाहरकी ओर** मालूम होती है। यदि **बायें क्षेपक-कोष्ठकी विवृद्धि** (hypertrophy of the left ventricle) होती है, तो यह

बाहर और नीचेकी ओर मालूम होता है। कभी-कभी यह धड़कन **ऊपरकी ओर** भी मालुम होती है, जब हृदावरणकी थैलीमें रस-संचय (pericardial sac) होता है।

इन कारणोंके अलावा, यह भी स्मरण रखना चाहिये, कि रोगीकी अवस्थाके अनुसार भी हृत्-शिखरकी धड़कनमें फर्क आ जाता है। **बच्चोंमें**—यह चौथी पसलीके बीचकी जगहपर होता है और **अवस्था-प्राप्त मनुष्योंमें** यह छठी पसलीके बीचकी जगहपर अनुभवमें आता है।

अगर हृत्पिण्डकी विवृद्धि हो जाती है, तो हृत्-शिखरका स्पन्दन बढ़ जाता है।

हृत्-शिखर-प्रदेशके अन्यान्य स्पन्दन—हृत्-शिखर-प्रदेशमें होनेवाले अन्यान्य स्पन्दनोंपर भी अब ध्यान देना चाहिये। यदि दाहिने क्षेपक-कोष्ठकी विवृद्धि या प्रसारण हो जाता है, तो स्पन्दन बहुत दूरतक फैला हुआ मालूम होता है। इस अवस्थामें यह स्थानके निचले भागमें, पर्शु काके बीचके स्थानोंमें तथा स्वाभाविक हृत्-शिखरकी धड़कनके पास ही कई पर्शु का मध्यमें दिखाई देता है।

कभी-कभी यह स्पन्दन दूसरे पर्शु का-मध्यस्थ स्थानपर मालूम होता है। यह फुस्फुसीया महाधमनी (pulmonary artery) से भी हो सकता है ; क्योंकि इस महाधमनीका आधा भाग वक्षोस्थिके बायें भागके आवरणके नीचे रहता है और इस भीतरी स्थानके भीतरी सिरेपर अथवा बायें ग्राहक-कोष्ठमें हो सकता है। पहलेवाली अवस्थामें यह हृत्-शिखरके धड़कनकी तरह ही धड़कन होती है और इससे मालूम होता है, कि फुस्फुसीया कपाट बन्द हो रहा है और दूसरी अवस्थामें तो धड़कन बहुत कम होती है। यह स्पन्दन हृत्-शिखरके स्पन्दनके पहले होता है।

जब वक्ष-प्राचीर बहुत पतली होती है और खासकर जब बायाँ फेफड़ा, यक्ष्मा या अन्य रोगोंके कारण संकुचित हो जाता है, तो हृत्-

शिखर प्रदेशके बहुत स्थानोंमें तथा हृत्-शिखरमें प्रसारित प्रकृतिका स्पन्दन सुनाई दे सकता है। ऐसी अवस्थामें पैरेस्टरनल रेखा और स्तन रेखाके बीचमें वक्ष प्राचीरके एक सीमित स्थानपर यह स्पन्दन हुआ करता है।

हृदय प्रदेशके अलावा अन्य स्थानोंमें स्पन्दन—ऊपर बताये स्पन्दनोंके अलावा, गलेकी जड़, वक्षका सम्मुख भाग तथा उदरोर्द्ध-प्रदेशमें भी स्पन्दन दिखाई दे सकता है :—

गर्दनकी जड़में—या तो ग्रीवा देशीय गह्वर (episternal notch) या बाहरकी मस्तक चालिनी-पेशी (sterno-mastoid) के स्थानपर दिखाई दे सकता है।

ग्रीवादेशीय गह्वरमें—जब यह स्पन्दन होता है, तो **महाधमनीके महराबका अर्बुद** (aneurysm of the arch of aorta) या **प्रसारण**के कारण होता है। हरित्पाडु तथा रक्तहीनता सम्बन्धी अन्यान्य बीमारियोंमें यह स्पन्दन शिरोग्रीवा धमनी (carotid artery) के स्थानपर भी दिखाई देता है।

मस्तक-चालनी पेशीके बाहरी भागमें—इसमें भी कितने ही स्पन्दन दिखाई देते हैं। ये या तो धमनीके स्पन्दन होते हैं या शिराके। मानसिक उत्तेजना, परिश्रम तथा रक्त वाहक संस्थानमें, उत्तेजना पैदा करनेवाली बीमारियोंमें तथा **गलगंडके** साथ बाहर निकले **चक्षु-गोलककी** बीमारी (ex-ophthalmic goitre) में बायें क्षेपक कोष्ठकी विवृद्धि तथा **धमनीके अर्बुदमें** यह स्पन्दन दिखाई देता है।

ग्रीवादेशीय शिरा (Jugular vein) में स्पन्दन नीचे लिखे कारणोंसे दिखाई देता है:—दाहिने क्षेपक और ग्राहक-कोष्ठके सकोचनके समय अगर **खूनका प्रवाह दूसरी ओर** चला जाता है, तो ग्रीवा-देशीय शिरामें स्पन्दन, खासकर दाहिनी ओर स्पष्ट दिखाई देता है।

वक्ष-गह्वरमें स्पन्दन (In the thorax)—हृत्प्रदेशके स्पन्दनों के अलावा, दूसरी दाहिनी उपपर्शुकाके स्थानपर भी एक प्रकारका स्पन्दन दिखाई देता है। यह महाधमनी कपाटके बन्द होनेके कारण होता है। महाधमनीके अर्बुदकी वजहसे भी वक्ष-गह्वरके अन्य स्थानोंमें स्पन्दन होता है। ऐसे स्पन्दन ४थी पसलीकी समताके स्थानपर पहले दिखाई देते हैं। इसके कुछ दिन बाद वक्ष-प्राचीरके विस्तृत स्थानपर मालूम होने लगते हैं। इस स्पन्दनका स्थान महाधमनीके रोगके अनुसार होता है। यदि **ऊर्ध्वगा महाधमनी**पर रोगका आक्रमण हो जाता है, तो स्पन्दन वक्षोस्थिके दाहिने भागमें होता है, **अधोगा महाधमनी**का रोगी होनेपर बायीं ओर स्पन्दन अनुभव होता है। यदि **अनामिका** (innominate) धमनीपर रोगका आक्रमण रहता है, तो यह स्पन्दन दूरपर गलेमें अनुभव होता है।

वक्षमें स्पन्दनशील पीब होना (Pulsating empyema)—यह बहुत कम होता है ; पर यदि होता है, तो हृत्शिखरके स्थानपर ही होता है और इस वजहसे हृत्पिण्ड अपने स्थानसे हट जाता है। इसके अलावा, उसके ऊपरकी वक्ष-प्राचीरमें भी उस समय स्पन्दन होता है; जब मारात्मक अर्बुद हो जाता है और उसमें बहुत खून भर जाता है।

उदरोर्ध्व-प्रदेशमें स्पन्दन (*In the epigastrium*)—यह कितने ही कारणोंसे होता है। इस समय विचार करना पड़ता है, कि यह स्पन्दन एकदम हत्-शब्दकी तरह है, जो हृत्शिखरके स्पन्दनकी भाँति मालूम होता है या यह स्पन्दन कुछ रुक-रुककर होता है अर्थात् हृत्शिखरकी धड़कनके बाद ही होता है।

यदि यह हृत-शब्दकी समतामें हो, तो इसका कारण दाहिने क्षेपक-कोष्ठका फैलना या विवृद्धि हो सकती है। इस समय भी यह देखना पड़ता है, कि वह अपना वेग सीधा गह्वरके सीमा-स्थानपर देता है या यकृतपर अपना वेग भेजता है अथवा यह हृत्शिखरकी वह धड़कन है, जो

किसी रोगके कारण जब हृत्पिण्ड अपने स्थानपर नहीं रहता, तब होती है। इस रोगमें बायीं ओरका वक्षावरक-झिल्ली प्रदाह और फुस्फुसमें वायु सञ्चय प्रधान है।

यदि स्पन्दन कुछ देरसे होता है, तो इसका कारण धमनी सम्बन्धी हो सकता है। यदि औदरिक महाधमनी (abdominal aorta) में अर्बुद हो जाये, तो ऐसा हो सकता है। साधारणत यह अवस्था स्नायुओंसे सम्बन्ध रखती है।

बायीं बगलमें स्पन्दन (Left axillary region)—दाहिनी ओरके फुस्फुसावरणमें ज्यादा मात्रामें रस सञ्चय, बायें फुस्फुसावरणमें पीव होना प्रभृति कारणोंसे होता है।

हृत्पिंडके तलदेशमें स्पन्दन (Base of the heart)—हृत्पिण्डका बढ़ना, महाधमनीके महराबका अर्बुद, यक्ष्मा आदि रोगोंके कारण फेफड़ेका सकोचन प्रभृति कारणोंसे यह स्पन्दन होता है।

शिरोधीया धमनीका स्पन्दन (Pulsation of carotid artery)—किसी कारणवश हृत्पिण्डमें उत्तेजना, रक्त हीनता, महाधमनीका उद्‌गीरण, धमनीका अर्बुद और प्रसारणकी वजहसे शिरोधीया धमनीका स्पन्दन होता है।

यदि यह उद्‌गीरण (निकलना) हृत्पिण्डके दाहिनी ओरसे होता हो, तो हृत्‌शिखरके आघातके बाद ही यह स्पन्दन होता है और याकृती धमनीमें पीछेकी ओरसे जो रक्त आता है, उसकी वजहसे होनेवाला यह यकृतका स्पन्दन है। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि यह हार्ट-फेलियोरकी अवस्थामें ही साधारणत• दिखाई देता है।

हृत्-शिखरकी स्पन्दन-शक्तिका बढ़ना—किसी प्रकारकी शारीरिक या मानसिक उत्तेजना, हृत्पिण्डका बढ़ना, यक्ष्माके कारण फेफड़ेका सिकुड़ना, वक्ष प्राचीरका पतला होना आदि कारणोंसे हृत्-शिखरकी स्पन्दन शक्ति बढ़ जाती है।

हृत्-शिखरकी स्पन्दन-शक्तिका घटना—एकाएक किसी तरहसे मानसिक आवेग, वायु-स्फीति रोग ; हृत्पिण्डका फैलना, हृत्पिण्डमें मेद-वृद्धि, हृदावरणमें रस-संचय इत्यादि कारणोंसे हृत्-शिखरका स्पन्दन स्वाभाविककी अपेक्षा कम होता है।

शिराओंका फूलना (Conspicious veins)—वक्ष-प्राचीरकी शिराएँ जब फूल जाती हैं, तब रोगीकी त्वचा बहुत ही स्वच्छ पारदर्शीकी तरह हो जाती है। (ख) जब रोगीने कोई ऐसा कठोर शारीरिक परिश्रम किया हो, जिसका प्रभाव उसके श्वास-यंत्रपर पड़ा हो। (ग) जब वक्ष-गह्वरमें अर्बुद होकर हृत्पिण्डमें रक्तके पुनः प्रवेश करनेमें रुकावट पड़ती हो। (घ) जब हृत्पिंडकी दाहिनी तरफकी क्रिया स्वाभाविक रूपसे नहीं होती। (ङ) जब संयुक्ता शिरा (portal vein) नामक शिरामें रुकावटकी वजहसे अथवा हृत्पिण्डकी अधोगा महाशिरामें रुकावट पड़नेके कारण उदरके अंश या निम्न-प्रत्यंगोंका रक्त बड़े वेगसे नीचेकी ओर जाता है।

२। स्पर्शन
(Palpation)

हृत्पिंडके सम्बन्धमें स्पर्शनसे नीचे लिखे विषय जानने चाहियें :—

(क) हृत्शिखरका आकार प्रभृति अर्थात् दर्शनकी क्रिया द्वारा जो कुछ जाना गया है, उसीका स्पर्शन द्वारा और भी अनुमोदन।

(ख) हृत्शिखरके स्पन्दनकी स्थिति और प्रकृति, अन्य प्रकारके हृत्शिखरके स्पन्दन, हृत्शिखरके अलावा वक्षके अन्य स्थानोंका स्पन्दन।

(ग) हृत्पिंड तथा रक्त-वाहिनियोंसे उत्पन्न कम्पन।

स्पर्शन द्वारा परीक्षक केवल उन विषयोंको निश्चय ही नहीं करता है, जो उसे दर्शन द्वारा मालूम हुए हैं ; बल्कि उन स्पन्दनोंकी भी जँचाई कर लेता है, जो केवल आँखसे देखनेमें नहीं आते।

स्पर्शन-कालमें रोगीकी स्थिति—यदि रोगी लेटा हो, तो उसे चित ही लेटा रखना चाहिये, अगर वह बाईं करवट हो जायगा, तो हृत्शिखरकी स्पन्दन-गति बदली रहेगी, उस समय वह स्थानान्तरित होकर बगलकी ओर चली जायगी। यदि दाहिनी करवट रहेगा, तो हृत्शिखर वक्ष-प्राचीरसे लगा रह सकता है और चित रहनेपर जो स्पन्दन मालूम हो सकते थे, वे अनुभवमें न आयेंगे।

परीक्षकको किस भावसे रहना चाहिये—रोगीकी भाँति ही परीक्षककी भी स्थिति एक जरूरी चीज है। हृत्शिखरकी परीक्षाके लिये उसे पलगके सिरहाने खडे होना या बैठना चाहिये और वह भी दाहिनी तरफ ; फिर उसको अपना दाहिना हाथ रोगीके वक्षपर रखना चाहिये, हाथ इस समय खासा गरम रहना चाहिये। हाथ इस ढंगसे रखना चाहिये कि हथेली हृत्पिण्डके तलदेशकी ओर रहे और अगुलियाँ हृत्शिखरकी ओर रहें। परीक्षा करनेके समय समूची तलहथी वक्ष-प्राचीरके साथ सटी रहनी चाहिये, साथ ही इस बातपर भी ख्याल रखना चाहिये, कि पसलियोंके मध्यके स्थानमें अगुलीके सिरे न छुए जायें, क्योंकि इससे तकलीफ होती है और परीक्षामें असुविधा पैदा हो जाती है, जब किसी स्थानमें स्पन्दन अनुभवमें आता है, तो अगुलीके पोरोंमें ही या कोमल अंशमें हो मालूम होता है इत्यादि।

सबसे पहला स्पन्दन, जो परीक्षकका ध्यान आकर्षण करता है, वह **हृत्शिखरका स्पन्दन है।** अगुलियोंको ही पता लग जाता है, कि यह मध्य रेखासे दूरीपर है। ऐसी अवस्थामें उस स्थानको हार्दिक हृत्-शिखर समझना चाहिये ; क्योंकि यह सबसे बायाँ ओर सबसे निचला स्थान है, वहाँ हृदयकी प्रत्येक धड़कनमें अगुलीमें स्पन्दन मालूम होता है। अगुलियोंमें नीचेसे आघात भी एक जरूरी बात है ; क्योंकि कलेजा जोरसे चलता है, तो वक्ष-प्राचीरमें एक स्पन्दन-सा होता है और यह अगुलीमें अनुभव होता है।

अब हृत्-शिखरका स्पन्दन मालूम होनेपर उसकी प्रकृति और अवस्था मालूम करनी चाहिये। पहले ही कहा जा चुका है, कि स्वस्थावस्थामें पेरेस्टरनल लाइनके बाहरकी ओर स्पन्दन होता है, परन्तु यह कभी भी बाम-स्तन-रेखाके बाहर नहीं जाता। नियमानुसार यह एक ही स्थान-पर रहता है और शायद ही कभी १ इञ्च व्यासके स्थानसे दूरीपर जाता है। स्पर्शनमें इन बातोंपर ही ध्यान देना चाहिये। यदि इसमें कुछ गड़बड़ी मालूम हो, तो लिख लेनी चाहिये। इसके अलावा, **हृदयकी क्रिया कितनी शक्तिसे हो रही है,** इसपर भी ध्यान देना चाहिये।

स्वाभाविक अवस्थासे विपरीत, निम्नलिखित कारणोंसे हृत्शिखरकी धड़कन अन्य स्थानोंमें मालूम हो सकती है।

(क) अगर बायें क्षेपक-कोष्ठकी विवृद्धि हो जाती है, तो हृत्-शिखरका स्पन्दन **फूले हुएकी तरह** (heaving) अनुभव होता है।

(ख) यदि हृत्पिण्ड उत्तेजित हो जाता है, तो जोरकी **चपत मारनेकी तरह** (sharp slapping) की भाँति हृत्-शिखरका स्पन्दन होता है।

(ग) हृत्पिण्डकी मेद-वृद्धि या किसी नये ज्वरको कुछ दिनोंतक भोगनेके बाद जब हृत्पिण्ड थक जाता है, तब हृत्शिखरका स्पन्दन कमजोर (feeble) मालूम होता है।

(घ) जब हृत्शिखरका स्पन्दन इतना क्षीण हो जाता है, कि मालूम नहीं होता—इस अवस्थामें यदि कमजोर रोगी लेटा रहता है, तो वह अनुभवमें नहीं आता, बैठा देनेपर स्पष्ट मालूम होने लगता है और यदि सामनेकी ओर झुक जाता है, तो और भी स्पष्ट अनुभवमें आने लगता है, पर जो बहुत रोगी हैं, उनको उठाना-बैठाना उचित नहीं है; परन्तु **अदृश्य हृत्शिखरकी धड़कनका** प्रधान कारण है—(१) वक्ष-प्राचीरका मोटापन। (२) फेफड़ोंका वायु-स्फीति रोग। (३) कमजोर हृत्पिण्ड।

वक्ष प्राचीरकी मोटाई, फेफड़ोंकी अवस्था, हृत्-शिखरकी धड़कनकी शक्ति वगैरहकी वजहसे कई तरहके स्पन्दन अनुभवमें आ सकते हैं। फुस्फुस और हृत्पिण्डकी नोकके तेजीसे बन्द होनेके कारण कभी कभी एक तरहका झटका सा अंगुलीमें अनुभवमें आता है।

स्पन्दनोंके अलावा, हृत्शिखरके पास एक तरहका कम्पन अनुभवमें आता है—इसको कम्पन (thrill) कहते हैं।

कम्पनका समय—जब यह कम्पन हृत्-शिखरकी धड़कनके साथ आरम्भ होता है और जबतक क्षेपक कोष्ठ सिकुड़ता है, तबतक होता रहता है, तो उसे **हृत्पिण्डका आकुञ्चन कम्पन** (systole or systolic thrill) कहते हैं। यदि हृत्पिण्डके क्षेपक-कोष्ठके फैलनेके समय व अनुभवमें आते हैं, तो उसे हृत्पिण्डका प्रसारण (diastolic) शब्द कहते हैं। यदि वे यह प्रसारण शब्दके अन्तमें मालूम हों, उस समय यद्यपि क्षेपक-कोष्ठ खुल जाते हैं, पर ग्राहक कोष्ठका आकुञ्चन आरम्भ हो जाता है। ऐसी अवस्थामें यह आवाज हृत्शिखरकी धड़कनमें आवाजके पास पहुँच जाती है। इसीलिये, इसे पूर्व-आकुञ्चन कम्पन (pre-systolic thrill)[१] कहते हैं।

ये कम्पन—हृत्कपाटकी बीमारी, हृदावरणका घर्षण (pericardial friction) अथवा फुस्फुसावरण-प्रदाह रोगमें हृत्पिण्डके सामने रहनेवाले बायें फेफड़ेका घर्षणके कारण पैदा हो सकते हैं। हृत्कपाटकी बीमारीके कारण जो होता है, उसकी हृत्शिखरकी धड़कनसे बहुत समानता मालूम होती है। हृत्पिण्डके आकुञ्चन शब्दका कम्पन, हृत्शिखरके स्थानपर अच्छी तरह मालूम होता है। इससे द्वि-कपाटके प्रत्यावर्त्तन (mitral regurgitation) की बीमारी मालूम होती है। ऐसा भी कभी-

१　बिल्लीके गुरनिके समय (Purring), उसकी पीठपर हाथ रखनेपर जो एक तरहका स्पन्दन होता है, उसीको कम्पन (Thrill) कहते हैं।

कभी होता है, कि महाधमनीकी रुकावटका कम्पन इस स्थानपर बहुत स्पष्ट-रूपसे मालुम होता है।

हृत्पिण्डका प्रसारण, कम्पन तथा पूर्व-आकुञ्चन कम्पन जब भीतरकी ओर हृत्‌शिखरकी धड़कनके साथ मालुम होता है, तो द्वि-कपाटके अवरोधकी बीमारी स्पष्ट-रूपसे मालुम हो जाती है।

हृदावरण और फुस्फुसावरणका कम्पन (Pericardial or pleural thrills)—इसका पता आकर्णन द्वारा ही लगता है। हृत्कोष्ठ जब फैल जाते हैं या उनकी जब विवृद्धि हो जाती है या जब इनके कपाटमें कोई रोग हो जाता है, तब यह कम्पन होता है।

पेरिकार्डियल-फ्रिक्शन-फ्रेमिटस (Pericardial-Friction-Fremitus)—इसमें हृदावरण-प्रदाह (pericarditis) की वजहसे हृदावरण (pericardium) के गात्रका स्वाभाविक चिकनापन नष्ट हो जाता है और एक तरहका खखड़ापन या कर्कशता आ जाती है। इस समय इन दोनोंका आपसमें जो घर्षण होता है, उसकी वजहसे अंगुलियोंमें एक तरहका कम्पन मालुम होता है, यही पेरिकार्डियल फ्रिक्शन-फ्रेमिटस है।

यहाँ यह ख्याल रखना चाहिये, कि साधारण फ्रिक्शन फ्रेमिटस—**फुस्फुसावरण-प्रदाहकी** वजहसे होता है और साँस बन्द करनेपर अनुभवमें आता है; परन्तु पेरिकार्डियल फ्रिक्शन-फ्रेमिटस **हृदावरण-प्रदाहकी वजहसे** होता है और साँस बन्द करनेपर भी यह अनुभवमें आता है।

त्रिकपाटका शब्द सुननेकी जगहपर कोई कम्पन नहीं होता।

फुस्फुसीया धमनीका स्पन्दन—दूसरे वाम पर्शुका-मध्यस्थ स्थानपर कभी-कभी हृत्‌-प्रसारण और कभी-कभी हृत्‌-आकुञ्चनके शब्दकी तरह अनुभूत होता है। बायें ग्राहक-कोष्ठका सदा पूर्व-आकुञ्चन शब्दकी तरह स्पन्दन होता है।

कितने ही रोगोंमें **फुस्फुसीया धमनी** (Pulmonary artery) में खासकर फुस्फुसीया धमनीका अवरोध या एक्स-आफ-थैलमिक गायटर (ex-ophthalmic goitre) में यह कम्पन बहुत कम नहीं मालूम होता।

वक्षोस्थिके पास, दूसरे दाहिने पर्शुका मध्यस्थ स्थानमें तथा दूसरी दाहिनी उपपर्शुकाके पीछे, स्पन्दन या कम्पन अनुभवमें आ सकता है। इसके अलावा, महाधमनीके मूलमें अर्बुद या ऊर्ध्वगा महाधमनीके महरावमें अर्बुद होनेपर कभी-कभी एक प्रकारका प्रसारणशील स्पन्दन अनुभवमें आता है।

गर्दनकी जड़में कम्पन—इस स्थानके स्पर्शन द्वारा सहज ही स्पन्दित रक्तवाहिनीका पता लग जायगा और निदानकी गड़बड़ी दूर हो जायगी। जब ग्रीवा देशीय गह्वर (episternal-notch) में स्पन्दन मालूम हो, तो स्पन्दनशील रक्तवाहिनीको अंगुलीसे दबानेकी चेष्टा करनी चाहिये। इससे यदि महाधमनीमें अर्बुद होगा, तो सहजमें पता लग जायगा।

इस समय इस बातपर पूरा पूरा ख्याल रखना चाहिये, कि गलदेशीय गह्वरम, वक्षोस्थिके ऊपर अंगुलीसे दबाते समय रोगीको ज्यादा तकलीफ न हो जाये। **महाधमनीके महरावका** यदि प्रसारण आरम्भ हो गया होगा, तो इससे पता लग जायगा और आरम्भावस्थामें ही चिकित्सा हो सकेगी। इस स्थानपर यह ध्यानमें रखना चाहिये, कि स्वस्थावस्थामें महाधमनी इतनी नीचेकी ओर रहती है, कि उसका इस तरह स्पन्दन जाँचना महान दुष्कर है। पता ही नहीं लगेगा।

महाधमनीका प्रसारण—आरम्भमें ही जान लेनेका एक दूसरा उपाय भी है। जब महरावका भीतरी भाग आक्रान्त हो जाता है, तो उसे वायु-नलीका आकर्षण (tracheal tugging) कहते हैं। स्वाभाविक अवस्थामें बायीं ओरकी श्वासनली महाधमनीके

महराबके नीचेकी ओर ही रहती है, पर जब महाधमनीके महराबमें अर्बुद हो जाता है, तब यह महाधमनीका महराब फूल जाता है, उस अवस्थामें हृत्पिण्डके हरेक बारके संकोचनके समय महाधमनीके महराबका अर्बुद, महाधमनीके महराबकी सामनेवाली श्वासनलीको नीचेकी ओर ढकेलता है। इसलिये, श्वास-नलीके ऊपरकी ओर जो वायु-नली मिली रहती है, वह नीचेकी ओर खिंच जाती है। इसीको छूकर (स्पर्शन द्वारा) परीक्षा करनी पड़ती है। यह इस तरह कि रोगीके पीछेकी ओर खड़े होकर, रोगीका मुँह बन्दकर हनु ऊपरकी ओर उठानेके लिये कहना चाहिये। इसके बाद परीक्षकको चाहिये कि दोनों हाथकी दो अंगुलियाँ रोगीकी वायुनलीके ऊपरवाली मुद्रा-उपास्थिपर (cricoid cartilage) रखे और धीरे-धीरे ऊपरकी ओर खींचें, इस तरह हृत्पिंडके हरेक संकोचनके समय ऐसा मालूम होगा कि दोनों ही अंगुलियाँ नीचेकी ओर खिंच रही हैं।

शिरोधीया धमनीमें स्पन्दन और कम्पनका भी अनुभव किया जा सकता है तथा स्पर्शन द्वारा यह अच्छी तरह जाँचा जा सकता है। ऊर्द्ध-अक्षक-गह्वर (supra-clavicular fossa) में भी अक्सर एक स्पन्दन उस स्थानपर अनुभवमें आता है, जहाँ अक्षकाधोवर्त्तिनी धमनी (sub-clavian artery) फुस्फुस-शिखर (apex of the lung) को पार करती है।

फुस्फुसावरणके रोग अथवा फेफड़ेके रोगके कारण रक्त-वाहिनियोंमें भी एक तरहका संकोचन हो सकता है।

यकृतका प्रसारणशील स्पन्दन—जब त्रिकपाट ठीक-ठीक कार्य नहीं करते, तब शिराओंमें पीछेकी ओर दबाव पड़ता है। इससे सभी यंत्र आक्रान्तसे अनुभवमें आते हैं। बहुतसे रोगियोंमें यह प्रसारणशील गति स्पष्ट-रूपसे मालूम होती है। इस स्पन्दनकी जाँचके लिये ५वीं और ६ठी उपपर्शुकापर एक हाथ रखना चाहिये और दूसरा कक्ष-मध्य-रेखामें यकृतके पीछेवाले प्रदेशमें रखना चाहिये। जब आकुञ्चनके

समय दाहिने क्षेपक-कोष्ठपर दबाव पड़ता है, तो उदरोर्ध्व-प्रदेशमें स्पन्दन होता है। यकृतके अंशके सिवा यह स्पन्दन किसी दूसरे स्थानपर शायद ही कभी अनुभवमें आता है। यदि उदरोर्ध्व प्रदेशके स्पन्दन (epigastric pulsation) में कोई सन्देह हो जाय, तो रोगीके बैठने या लेटनेकी स्थितिमें जरा परिवर्तन ला देनेसे ही सहजमें निदान हो जाता है। यदि उसे घुटने और केहुनीके भार रखा जाय, तो बहुत सरलतासे परीक्षा हो सकती है।

३। आघातन
(Percussion)

आघातनसे नीचे लिखी बातें मालूम होती हैं :—

(क) हृत्पिण्ड तथा आस-पासके यन्त्रोंकी सीमा, उनमें गहरी ठोस आवाज (deep dullness) का अगभीर ठोस आवाज (superficial dullness) का पता लगता है।

(ख) हृत्पिण्ड सम्बन्धी यन्त्रोंकी अस्वाभाविक अवस्था, हृदावरणमें रस-स्राव या अर्बुदमय प्रसारण आदिका ज्ञान होता है।

हृत्पिण्डपर आघातनके यंत्र
(Instrument of heart percussion)

यह आघातन द्वारा परीक्षाकी प्रणाली जब प्रचलित हुई, तब एकदम रोगीको त्वचापर आघात दिया जाता था। जिस स्थानपर आघातन करना होता था, वहाँ कोई चीज नहीं रखी जाती थी ; इसको **मुख्य आघातन** (direct percussion) कहा जाता है, परन्तु इसका व्यवहार अब नहीं होता। केवल वक्षक स्थानकी परीक्षा करनेके समय चिकित्सक अपनी अंगुलीकी नोकसे वक्षक स्थानको ठोकता है।

प्लेक्सिमेटर—शब्दको अच्छी तरह प्राप्त करनेके लिये तथा रोगीके आरामपर ख्याल रखकर कभी-कभी एक हाथी दाँतकी तख्तीकी तरह पदार्थ जो रोगीकी छातीपर अच्छी तरह बैठ जाता था, रखा जाने लगा और इसीपर चोट दी जाने लगी—यही प्लेक्सिमेटर (pleximeter) है।

परन्तु इसका भी प्रयोग कम ही होता है। अधिकांश चिकित्सक बायें हाथकी मध्यमा या तर्जनीको प्लेक्सिमेटरके बदले उस स्थानपर रख लेते हैं, जहाँकी परीक्षा करनी होती है तथा उसीपर आघात करते हैं, इसीमें सुविधा भी होती है।

प्लेक्सर—रबर-चढ़ी छोटी हथौड़ीकी तरह एक पदार्थ आघातके लिये रखा जाता है, इसके द्वारा ही अंगुलीपर आघात किया जाता है; परन्तु सुविधा अंगुलीसे ही होता है।

आघातनका साधारण नियम

(Ordinary method of Percussion)

१। जिस स्थानकी आघातन द्वारा परीक्षा करनी होती है, वहाँ बायें हाथकी मध्यमा अंगुली दृढ़तासे रखी जाती है और इस तरह रखी जाती है, कि उसके नीचे हवा न घुस सके। इसी अंगुलीकी पीठपर दाहिने हाथकी मध्यमा अंगुलीसे आघात किया जाता है।

इस सम्बन्धमें तीन बातें स्मरण रखनी चाहियें :—

(क) पहले तो हृत्पिण्डका स्थान निर्णय करना चाहिये और यह देख लेना चाहिये, कि कितनी दूरतक फैला है तथा इसका कितना हिस्सा फेफड़ेसे ढँका हुआ है और आघातन इस ढंगसे करना चाहिये, कि जो स्थान प्रतिध्वनि देनेवाले हैं, उस ओरसे आघात करते हुए कम प्रतिध्वनि देनेवाले स्थानकी ओर आना चाहिये।

(ख) दूसरी बात यह कि प्लेक्सिमेटर यंत्र हो या अंगुली, उसे इस ढगसे रखना चाहिये, कि जिस यन्त्रकी परीक्षा करनी हो, उसके किनारेकी समतामें रहे ; आघातन उस किनारेके समकोणके अनुसार होना चाहिये ।

(ग) तीसरी बात यह कि प्लेक्सिमेटर हो या अंगुली, वक्ष-प्राचीरसे खूब चिपकी रहना चाहिये ।

हृत्पिण्डकी परीक्षाका दो उद्देश्य हैं :—एक तो सम्पूर्ण यन्त्रका आकार और स्थितिकी जाँच करना और दूसरे उसका कितना अश फेफड़ेसे ढँका और वक्ष-प्राचीरके सामने है—यह देखना ।

हृत्पिण्डका अधिकाश भाग प्रतिध्वनि देनेवाले फेफड़ेसे घिरा है, यह इतनी गहराईपर भी नहीं है, कि प्रतिध्वनिकी आवाज न आये । कोई भी इसकी बाहरी सीमा ध्यानपूर्वक देखकर निर्णय कर सकता है ; क्योंकि हृत्पिण्ड-प्रदेशमें आघात द्वारा उस स्थानपर पहुँचाया जा सकता है, जहाँकी फेफड़ेकी ध्वनि खोखली होती जाती है । हृत्-तलदेशकी आवाज ठोस या खाली मालूम होती है , क्योंकि वहाँ बड़ी-बड़ी रक्तवाहिनियाँ हैं ।

यह भी ध्यान देनेकी बात है, कि हृत्पिण्डका कितना भाग फेफड़ेसे ढँका हुआ नहीं है । यह उसी ओर धीरे-धीरे आघातन करनेसे पता लग जाता है और उसी स्थानपर सीमा मालूम होती है, जहाँ कि फेफड़ेकी हल्की प्रतिध्वनिके बदले एकदम ठोस आवाज आने लगती है ।

हृत्पिण्डका वह प्रदेश जो फेफड़ेसे ढँका रहता है, उसे **गभीर ठोस** शब्दका प्रदेश (area of deep or relative cardiac dullness) कहते हैं । हृत्पिण्डका वह प्रदेश जो फेफड़ेसे ढँका रहता है और वक्ष-प्राचीरके ठीक पीछे रहता है—वह **हृत्पिण्डके ठोस** शब्दका अगभीर प्रदेश (area of superficial or absolute cardiac dullness) कहलाता है ।

गभीर ठोस शब्द

(Deep dullness)

इसका एक दूसरा नाम "रिलेटिव डलनेस" भी है। दृढ़तासे आघातन करनेपर हृत्पिण्डका दाहिना, बायाँ और हृत्पिण्डकी ऊपरी सीमाका वह भाग जहाँ वृहत्-धमनियोंका मूल है, अच्छी तरह जाना जा सकता है। यह जाननेके लिये दो ओर आघातन करना पड़ता है। एक तो मध्यके स्थानसे कुछ दूरपर, महाधमनीके बायें, पर इस समय हृत्पिण्डका ऊपरी सिरा भूल न जाना चाहिये। वहाँसे लेकर बायीं पैरेस्टरनल रेखातक ; दूसरे दाहिनेसे बायें, एक सीधी रेखामें जहाँतक सम्भव हो, वहाँतक वक्षके नीचेतक आघातन करना चाहिये। इसके अलावा, इस रेखाकी सीधमें हृत्पिण्डके बायें ओर भी आघातन करना चाहिये ; पर इस बार बायेंसे दाहिनी ओर आघातन करना चाहिये। इस सरल रेखामें प्रथम पर्शुका मध्य स्थान (पसलीके बीचकी जगह) आघातन कर, दूसरे और तीसरे पर्शुका मध्यस्थ स्थानकी प्रतिध्वनिसे तुलना करनी चाहिये। इसी तरह बराबर नीचेकी ओर तबतक आघातन करते जाना चाहिये, जबतक क्षीण-प्रतिध्वनिका चिह्न न मिल जाये। इसीसे पता लग जाता है, कि हृत्पिण्डकी सीमा आ पहुँची है ; पर यह ठोस आवाज पसलीके स्थानपर जहाँ धीमी आवाज मालूम हुई थी तथा उस मध्य स्थानके ऊपर मालूम हो सकती है। इसलिये, इस पसलीको आवाजकी तुलना दूसरी पसलीकी आवाजसे करनी चाहिये। यदि नीचेवाली दोनों पसलियोंके स्थानकी प्रतिध्वनि ऊपरवालीसे धीमी मिले, तो समझना चाहिये कि हृत्पिण्ड इसके पीछे है।

हृत्पिण्डकी दाहिनी सीमापर आघातन करनेके पहले, यकृत स्थानकी गभीर ठोस आवाजका पता पैरेस्टरनल और दाहिनी स्तन-रेखापर आघात कर लगा लेना चाहिये। जब यह हो चुके, तब दाहिनी

स्तन रेखासे वक्षोस्थिकी ओर तथा पसली और पर्शुका-मध्य-स्थानपर आघातन करते हुए वहाँतक चले जाना चाहिये, जहाँ यकृतके स्थानकी ठोस आवाज पहले मालूम हुई थी।

यद्यपि हृत्पिण्डकी निचली सीमापर आघातन नहीं किया जा सकता, तथापि इसका बहुत कुछ पता इस तरह लगा लिया जा सकता है, कि जहाँ यकृत सम्बन्धी ठोस आवाज मालूम हुई थी, उसके ऊपरी भागसे एक रेखा खींच दी जाये और ४थी पर्शुकाका मध्य स्थान या ५वीं पसलीसे होती हुई हृत्-शिखरतक पहुँच जाये, यही हृत्पिंडकी निचली सीमा है।

४थे पर्शुका-मध्य-स्थानकी बायें फेफड़ेकी ओरसे हृत्पिण्डकी ओर आघातन करनेपर बायीं सीमा अच्छी तरह मालूम हो जा सकती है। यदि और बातें जाननी हों तो अन्य रेखाओंकी सीधमें फेफड़ेसे हृत्पिण्डकी ओर आघातन करना चाहिये।

स्वस्थ अवस्थामें साधारणतः वक्षके आघातकी सीमा नीचे लिखे अनुसार है :—

ऊपरी किनारा (बायीं पैरेस्टरनल रेखामें)—३री पसली या ३रे पर्शुका-मध्यस्थ-स्थानका ऊपरी किनारा।

दाहिना किनारा (४थी पसलीकी समतामें)—यह दाहिनी पश्चात् वक्षोस्थि रेखाके ठीक दाहिनी ओर है।

बायाँ किनारा (४थी पसलीकी समतामें)—स्तन-रेखाके भीतरकी ओर यदि इसमें कुछ ऊँचे स्थानपर आघातन किया जाये, तो यह इस तरह टेढ़ा होता हुआ मालूम होगा कि ऊपरी किनारेसे मिल जायगा।

खुलासा—यह गंभीर ठोस आवाज उस स्थानपर आती है, जहाँ फेफड़ेने हृत्पिंडको ढँक रखा है।

हृत्‌शिखर यकृतके ऊपर रहनेके कारण हृत्पिंडके नीचेवाले स्थानमें यकृतकी ठोस आवाजके साथ हृत्पिण्डके नीचेवाले प्रदेशकी आवाज मिल जाती है।

हृत्पिंडके तलदेशमें बड़ी-बड़ी रक्तवहा-नाड़ियाँ हैं, वहाँ भी वही ठोस आवाज होती है।

अगभीर ठोस शब्द (The superficial dullness of the heart)—यह बहुत कुछ फेफड़ोंके किनारोंपर निर्भर है।

चित्र नं० ७
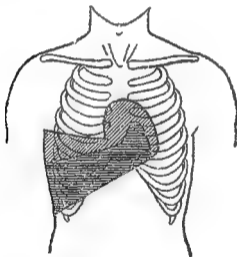
स्वाभाविक हृत्पिण्ड तथा यकृतकी गभीर और अगभीर ध्वनिका स्थान।

फेफड़ेकी ऊपरी सीमा जाननेके लिये बायीं लेटरल स्टरनेल और बायीं पैरेस्टरनल रेखाके बीचमें आघातन करना चाहिये। बायीं सीमा जाननेके लिये बायें स्तनसे मध्य रेखाकी ओर ४थे पर्शुका-मध्यस्थ-स्थान

या ४वीं पसलीके स्थानतक आघातन करना चाहिये। दाहिनी सीमा निर्णय करनेके लिये उसी समतामें धीरे-धीरे आघात देना चाहिये, पर उसे वक्षोस्थिके दाहिनेसे ही आरम्भ करना चाहिये।

स्वस्थावस्थामें ऊपरी सीमा ४थी पसलीपर रहती है। बायीं सीमा इसके ऊपरी अन्तवाले स्थानपर और हृत्पिडकी बायीं सीमाके करीब आध इञ्च भीतर है। इसका निचला स्थान सीमाके पास ही रहता है और हृत्शिखरकी धड़कनके स्थानतक चला जा सकता है। इसका दाहिना किनारा दाहिने फेफड़ेसे नहीं मिलता, क्योंकि यह वक्षोस्थिके पीछे रहता है। यह बायीं लैटरल रेखामें ४थी से छठी उपपर्शुकातक फैला रहता है। बायीं सीमा टेढ़ी होती हुई ऊपर चली जाती है और दाहिनी वक्षोस्थि रेखामें मिल जाती है। अतएव, यह तिकोनियाँ हो जाता है, पर बायीं भुजा सीधी नहीं, बल्कि कुछ उठी हुई रहती है।

वक्षोस्थिके पीछे रहनेके कारण यह धीमी ठोस आवाज ठीक-ठीक मालूम नहीं होती पर यदि **अर्बुदके कारण ऊर्ध्वगा महाधमनीका प्रसारण** (dilatation of ascending aorta) हो गया हो, तो थोड़ी दूरके स्थानकी आवाज स्पष्ट ठोस होगी। यह स्थान लगातार हृत्पिण्डके स्थानतक चला जाता है, ऊपर यह वक्षोस्थिके दाहिनी ओर दूसरे पर्शुका-मध्य-स्थानकी समता और बायकी पसलियोंकी तरफ घूम जाता है और वक्षोस्थिके ऊपरी अशमें आघातन करनेपर बहुत कम प्रतिध्वनि निकलती है, यहाँतक कि यदि अर्बुद बड़ा रहता है, तो एकदम ठोस आवाज आती है।

परिवर्त्तन—रोगवाली अवस्थामें ठोस आवाज और हृदयकी ठोस आवाज—दोनोंका ही आकार और स्थान परिवर्त्तन हो जा सकता है। हृदावरणमें रस सञ्चय रोगके सिवा अगम्भीर ठोस आवाजके स्थानका पता पा जानेपर भी हृत्पिण्डके सम्बन्धमें कुछ विशेष पता नहीं लगता, पर

इससे फुस्फुसावरक-झिल्ली (pleura) और फेफड़ोंके सम्बन्धमें बहुतसे रोगोंका पता लग जाता है।

गभीर ठोस शब्दका विस्तार (Extension of deep dullness)—हृदावरण या हृत्पिण्डकी बीमारीके कारण यह अवस्था उत्पन्न हो जा सकती है या आस-पासके यंत्र यदि रोगाक्रान्त हो पड़े, तो भी यह अवस्था आ जाती है। यदि बायीं पैरेस्टनल रेखाकी ठोस आवाज ऊपरकी ओर दूसरे पर्शु का-मध्यस्थ स्थान या उससे भी ऊँचे फैली मालूम हो ; पर निचली सीमा ऊपरकी ओर स्थान-च्युत न हो, तो हृत्पिण्डकी ऊपरकी ओर स्थान-च्युत समझना होगा और यदि फेफड़ेकी कोई बीमारी न हो, तो समझना होगा कि **हृदावरणमें रस-संचय** हो गया है। अधोगां महाधमनीके महरावका अर्बुद ही उस स्थानकी ठोस आवाजका कारण होता है, पर यह तभी अनुभवमें आता है, जब अर्बुद बहुत बढ़ जाता है।

यदि धीमी ठोस आवाज हृत्शिखरकी धड़कनकी जगहके बायीं तरफ फैल जाये और फुस्फुसावरण तथा फेफड़े स्वस्थ रहें, तो समझना होगा कि हृदावरणमें रस-संचय हो गया है। इस अवस्थामें दाहिनी सीमा वक्षोस्थिसे दाहिनी ओर बहुत दूरीपर रहेगी—यहाँतक कि दाहिनी पैरेस्टरनल रेखातक चली जा सकती है। यदि हृत्पिण्डकी ठोस आवाज बायीं स्तन-रेखातक चली जाये, पर हृत्शिखरकी सीमाके बाहर न पहुँच जाये, तो यह अवस्था वाम क्षेपक-कोष्ठकी विवृद्धि या प्रसारणके कारण हो सकती है।

यदि फेफड़ेकी कोई बीमारी, फुस्फुसावरण-प्रदाह या हृदावरणमें रस-संचय न रहनेपर भी यह ठोस आवाज लगभग आधा इञ्च **वक्षोस्थिके दाहिनी ओर** फैल जाये, तो यह निर्णय करना होगा कि **हृत्पिंडका दाहिना भाग प्रसारित** हो गया है।

रसस्रावके साथ हृदावरण प्रदाह (Pericarditis with effusion) के कालमें जो ठोस आवाज आती है, वह जितना रस इकट्ठा रहता है, उसीके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारकी होती है।

फेफड़े और फुस्फुसावरणकी बीमारीके कारण ही हृत्पिण्डके स्थानकी ठोस आवाज बढ़ जाती है अर्थात् स्वाभाविककी अपेक्षा अधिक स्थानपर यह आवाज होती है।

अगभीर ठोस आवाजका घटना (Diminution of superficial dullness)—ऐसे रोगियोंमें जिनका हृत्पिण्ड बहुत

चित्र नं० ८
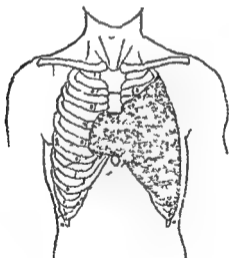
बायीं ओरके फुस्फुसावरणमें रस-स्रावके कारण हृत्पिण्डकी स्थान-च्युति।

छोटा होता है अथवा जिनके फफड़े वायुसे इतने फूले रहते हैं, कि फुस्फुस तन्तुकी एक मोटी तहसी बन जाती है। इनकी वजहसे

आघातनकी क्रिया ही हृद्-सीमातक नहीं पहुँच पाती और इसीलिये यह आवाज घटी मालूम होती है। फुस्फुसावरण-गह्वरमें भी हवा रहनेपर ठोस आवाज आनेके स्थानकी सीमा घट जाती है। न्युमोपेरिकार्डियम रोगमें तो यह बिल्कुल ही नहीं आती।

अगभीर ठोस आवाजका स्थान—यह फेफड़ोंकी अवस्थापर निर्भर करती है। यदि फेफड़े सिकुड़े रहते हैं, तो यह आवाज आनेवाले स्थानकी सीमा ज्यादा रहती है, जब वे फूले रहते हैं या उनमें अर्बुद रहता है, तो यह स्थान बिलकुल ही घट जाता है अथवा ऐसी जगहका पता ही नहीं रहता।

हृत्पिंडकी ठोस आवाजके स्थानका परिवर्त्तन—तभी होता है, जब हृत्पिण्डके स्थानमें परिवर्त्तन आ जाता है। यह सीमाके दबाव अथवा अस्वाभाविक रूपसे बढ़ जानेके कारण होता है। इस तरह डेक्स्ट्रोकार्डियामें हृत्पिण्ड दाहिनी ओर हृत्शिखरके पास चला आता है और ऐसी अवस्थामें ठोस आवाजका स्थान ही बता देता है, कि क्या रोग हुआ है?

उदरी या किसी अर्बुदके कारण हृत्पिण्ड ऊपरकी ओर फेफड़ेमें चला जाता है। इसलिये, स्वाभाविक स्थानकी अपेक्षा ऊपरकी ओर ठोस आवाज आती है तथा ऊपर रहनेवाले फेफड़ोंकी मोटाईके कारण उनका माप-जोख कठिन होता है।

यकृतका अर्बुद भी ऊपरकी ओर बायीं तरफ हृत्पिण्ड ढकेले रहता है। फुस्फुसका अर्बुद हृत्पिण्डको नीचेकी ओर हटा देता है, फुस्फुसावरणमें रस-संचय इसे वक्षके दाहिनी ओर हटा देता है। कितनी ही बार हृदावरणके रस-संचयमें बायीं स्कन्धास्थिके सामनेकी ओर ठोस आवाज आती है।

आकर्णन
(Auscultation)

आकर्णन द्वारा हृत्पिण्ड तथा रक्तवाहिनियोंकी आवाजें सुनी जाती हैं। इससे (क) हृदयकी आवाजोंकी गति और प्रकृति—

(ख) तथा हृदयकी आवाजके साथ आई हुई अस्वाभाविक आवाजोंके पता लगता है।

(१) हृदयकी आवाजोंका चरित्र और गतिमें तीन विषय आते हैं :—

(क) आवाजकी तेजी।
(ख) सामयिकता, ताल।
(ग) गुण।

(२) अस्वाभाविक आवाजोंका हृत्पिण्डकी आवाजके साथ आना—

(क) हृदय-प्रदेशमें आवाजें।
(ख) रक्तवाहिनियोंकी आवाजें।

हृत्पिण्डकी स्वाभाविक आवाजें
(Normal sounds of the Heart)

स्वस्थावस्थामें हृत्पिण्ड तथा रक्तवाहिनियोंकी स्थानोंपर दो तरहकी आवाजें आती हैं। एक—प्रथम शब्द (First sound) और दूसरा—द्वितीय शब्द (Second sound)।

प्रथम शब्द (First sound)—इसको संकोचन शब्द (systolic sound) भी कहते हैं। हृत्पिण्डके दाहिने-बायेंके क्षेपक कोष्ठके सिकुड़नेके समय, त्रि कपाट (tri-cuspid valve) और

द्वि-कपाट (bicuspid valve) रुक जानेकी वजहसे जो आवाज पैदा होती है, वही पहली आवाज या प्रथम शब्द है। किसी स्थानपर आघात करनेसे या लप (lup) शब्द, उच्चारण करनेके समय इसी तरहकी आवाज होती है।

संकोचन या प्रथम शब्दका स्थान—हृत्‌शिखरकी जगहपर अर्थात् बायें स्तनके एक इञ्च नीचे और वक्षोस्थिकी मध्य-रेखा (mid-sternal line) में, बायाँ और साढ़े तीन इञ्चकी दूरीपर यह आवाज सुनी जाती है।

संकोचन शब्दका विराम-काल (Systolic pause)—संकोचन शब्द होनेके बाद थोड़े कालतक या क्षणमरके लिये किसी तरहकी आवाज नहीं होती। इसको **सिस्टोलिक पौज** कहते हैं।

तेजीमें फर्क

(Alterations in intensity)

(क) **प्रथम शब्दकी कमजोरी**—किसी बीमारीमें इस प्रथम शब्दका समय कम होना या उसकी कमजोरी अथवा इस आवाजका ही न आना, बताता है कि हृत्पिण्ड रुक जाना चाहता है। नये ज्वरकी बीमारीमें यह परिवर्त्तन बहुत तेजीसे होता है। अतएव, इसपर बहुत ध्यान रखना चाहिये।

(ख) **प्रथम शब्दकी जोरकी आवाज** (Accentuating first sound)—द्वि-कपाटका रोध होनेपर (mitral stenosis) संकोचनका शब्द जोरका होता है। एक दूसरी तरहकी जोरकी आवाज अक्सर कलेजा धड़कनेकी बीमारी (dachycardia) में होती है और जब हृत्पिण्डकी चाल कम पड़ जाती है, तब यह आवाज बन्द हो जाती है। बायें क्षेपक-कोष्ठकी विवृद्धिके कालमें भी यह आवाज जोरकी होती

है या यह ठोस लम्बी और थपकी तरह होती है। इसका कारण यह है, कि अस्वाभाविक रूपसे जोरसे कपाटके बन्द होनेका स्पन्दन शब्द मोटी छत् प्राचीरको वेधकर आता है।

द्वितीय शब्द
(Second sound)

यह दूसरी आवाज बायें और दाहिने क्षेपक कोठके प्रसारणके समय महाधमनी कपाट (aortic valve) और फुस्फुसीया धमनी कपाट (pulmonary valve) के रोध होनेकी वजहसे निकलती है। इसको प्रसारण शब्द (diastolic sound) कहते हैं। यह एक प्रकारकी तेज और थोड़े क्षणतक स्थायी आवाज होती है। डुप (dup) बन्द होनेके समय ऐसी आवाज होती है।

प्रसारण शब्दका स्थान—यह आवाज हृत्पिंडके तलदेश (base of the heart) के पास अर्थात् तीसरी पर्शुका और वक्षोस्थिके संयोग स्थानपर होती है।

डायस्टोलिक पाज (Diastolic pause)—यह हृत्प्रसारण शब्दका विराम काल कहलाता है।

इसके बाद ही प्रथम शब्द होता है और इसी तरह बराबर हुआ करता है।

द्वितीय शब्दकी प्रखरता
(Intensity of the second sound)

यदि द्वि-कपाट या त्रि कपाटके स्थानपर द्वितीय शब्द पहलेकी अपेक्षा तीव्र हो तो कहना पड़ेगा, कि या तो प्रथम शब्द (संकोचन शब्द) क्षीण पड़ गया है या द्वितीय शब्दकी आवाज तेज पड़ गयी है।

यदि महाधमनी और फुस्फुसीया धमनीके स्थानपर प्रथम शब्द दूसरे शब्दकी अपेक्षा अधिक तीव्र हो, तो समझना होगा कि पहली आवाज बढ़ गयी है।

यदि महाधमनी या फुस्फुसके स्थानपर द्वितीय शब्दकी प्रखरता मालूम हो, तो यह प्रखरता रोगीकी अवस्थाके कारण भी अदल-बदल हुआ करती है। जवानीमें महाधमनीके स्थानकी आवाजकी अपेक्षा फुस्फुसके स्थानकी आवाज प्रखर होती है; परन्तु बुढ़ापेमें स्वास्थ्य अच्छा रहनेपर भी इसके विपरीत हुआ करता है।

द्वितीय शब्दकी प्रखरताका तात्पर्य यह है, कि जिस स्थानपर यह प्रखर आवाज होती है, वहाँका कपाट अस्वाभाविक वेगसे बन्द होता है। यह वेग या तेजी उस रक्त-प्रवाहपर निर्भर करती है, जो उसे बन्द करता है और यह वेग ठीक इसी तरह रक्तके परिमाण और जिस वेगसे वह कपाटमें धक्का देता है, उसपर निर्भर करता है। महाधमनीमें उस समय रक्तकी मात्रा बढ़ जाती है, जब उसके उत्पत्ति-स्थानके पास रक्तवहा नाड़ीका प्रसारण हो जाता है। संकुचित छोटी धमनियाँ या दूसरी रुकावटोंके कारण भी धमनीमें रक्तका दवाव बढ़ जाता है। यदि पूर्वके कारणसे महाधमनीका जोरका शब्द होता है, तो यह **आवाज बोतलसे काग निकाल लेने जैसी**—भूक-से होती है। फुस्फुसीया धमनीपर द्वितीय शब्दकी प्रखरतासे मालूम होता है, कि रक्तका दवाव (blood pressure) बढ़ गया है और यह फुस्फुसीया धमनीके रक्तके दवावकी वृद्धि या तो फेफड़ेकी किसी बीमारीके कारण हुई है अथवा हृत्पिण्डके वाम पार्श्वके किसी रोगके कारण होती है।

खुलासा—महाधमनीका अर्बुद, वायें क्षेपक-कोष्ठकी विवृद्धि और रक्तका दवाव जब समूचे शरीरमें बढ़ता है, तो केवल महाधमनी-कपाटकी आवाज प्रखर हो जाती है इत्यादि।

दाहिने क्षेपक कोष्ठकी विवृद्धि, द्वि-कपाट अवरोध और फुस्फुसीया धमनीके खूनका दबाव बढ़नेपर सिर्फ फुस्फुसीया धमनी कपाटका शब्द प्रखर हो जाता है।

पर यदि किसी कपाट प्रदेशमें या फेफड़ेमें गह्वर बन जाता है (cavity in the lung), तो उस जगहकी आवाज गह्वरके कारण और भी प्रखर होती है।

द्वितीय शब्दका क्षीण होना (Weakening of second sound)—अगर क्षेपक कोष्ठ कमजोर पड़ जाते हैं अथवा महाधमनी-कपाट और फुस्फुसीया धमनी-कपाट मोटा पड़ जाता है और यदि उनकी स्थिति स्थापकता घट जाती है, तो हृत्पिण्डका यह द्वितीय शब्द स्वाभाविककी अपेक्षा कमजोर होता है।

हृत्शब्दकी गति या तालमें परिवर्त्तन
(Change in Rhythm of Heart sound)

प्रथम शब्दका दोहराना (Reduplication of the first sound)—कितनी ही ऐसी अवस्थाएँ हैं, जिनमें प्रथम या द्वितीय शब्दकी आवाज दो बार होती है। इसका प्रधान कारण यह है, कि कपाट, वे अर्द्ध-चन्द्राकार (semilunar) हों या कोई दूसरे हों, हृत्पिण्डके एक ओरकी अपेक्षा दूसरी ओरके जल्द बन्द होते हैं। यही वजह है, कि यह आवाज दो बार मालूम होती है। इसकी खास वजह है, कि दाहिने और बायें क्षेपक कोष्ठका एक भाग सङ्कुचित हो जाता है तथा महाधमनी कपाट और फुस्फुसीया धमनी-कपाटकी भी यही अवस्था रहनेके कारण महाधमनी और फुस्फुसीया धमनीका रक्तका दबाव बढ़ जाता है और इसी वजहसे कपाटोंकी क्रियामें तेजी आ जाती है ; पर यह बात सर्वत्र लागू नहीं होती। स्वस्थावस्थामें जरा भी खूनका दबाव

ऊँचा हुआ कि आवाज दोहरायी। इसके अलावा, ब्रूट डि गैलाप (Bruit de galop) नामक अवस्थामें—ग्रन्थि-वात (गाउट), मूत्र-ग्रन्थिकी बीमारी (kidney disease), धमनीमें रक्तका दबाव (blood pressure in artery) अधिक होना प्रभृतिके कारण प्रथम शब्द दोहरा जाता है।

द्वितीय शब्दका दोहराना (Reduplication of second sound)—इस द्वितीय शब्दके दोहरानेसे मालूम होता है कि फुस्फुसके यंत्रोंपर विशेष दबाव है। कितनी ही फेफड़ेकी बीमारियोंमें तथा हृत्पिंडकी बायीं ओरकी बीमारीमें, द्वि-कपाटकी अवरुद्धतामें यह आवाज सुन पड़ती है। ऐसा भी मालूम हुआ है, कि जब दाहिना तथा बायाँ क्षेपक-कोष्ठ एकके बाद दूसरे ठीक-ठीक नहीं संकुचित होते, तब ऐसा ही होता है। अति परिश्रमके कारण भी ऐसा होता है अथवा हृत्पेशीकी बनावटकी गड़बड़ीके कारण ऐसा हो सकता है अथवा उनकी क्रियाको नियमित बनाये रखनेवाले स्नायुओंके विकारके कारण भी ऐसा शब्द होता है।

स्वाभाविक स्वस्थ मनुष्योंके लम्बी साँस लेनेकी अन्तिम अवस्थामें और लम्बी साँस छोड़नेकी पहली अवस्थामें हृत्पिण्डका यह द्वितीय शब्द लगातार दो बार सुना जाता है। इसके अलावा, द्वि-कपाटका रुकना (mitral stenosis), वायु-स्फीति (emphysema), हृदावरण-प्रदाह (pericarditis) और धमनी-प्राचीरका कड़ा पड़ जाना (arterio sclerosis) प्रभृतिमें हृत्पिण्डका दो शब्द सुननेमें आता है।

हृत्शब्दके ताल या गतिमें परिवर्त्तन

इस ताल या गतिके परिवर्त्तनपर भरपूर ध्यान रखना चाहिये। ठीक ठीक ताल या लय तीन प्रकारकी होती है। पहली आवाज द्वि कपाट और त्रि कपाट प्रदेशपर होती है। दूसरी महाधमनी और फुस्फुसीया महाधमनीकी जगहमें और तीसरी चुप। बस यही ३ ध्वनि है। इसमें पहलीमें थोडा सा परिवर्त्तन यह आ जाता है, कि जब हृत्पिण्डकी चाल कुछ तेज रहती है, तब क्षेपक कोष्ठके प्रसारणके समय यह कुछ समय लेती है, पर जब लगातार रक्तका दबाव पडता है, जैसे कि पुराने वृक्क प्रदाह (nephritis) में तथा ज्वरमें होता है, तो आवाज सम गतिमें होती है और क्षेपक कोष्ठके आकुञ्चनका समय बढ जाता है। यह लगातार घडीके लगरकी तरह गति (deliberate pendulum like sequence) खूब चिन्तापूर्वक लक्ष्य करनी चाहिये, क्योंकि इससे प्रकट होता है, कि रोगीपर डिफिटिरियाका विष असर कर रहा है और हृत्पिण्डके स्नायुओंपर प्रभाव पहुँच रहा है।

जब आकुञ्चन तेजीसे होता है, तो बिल्कुल विपरीत ही शब्द होता है या बहुत कमजोरीके कारण जब क्षेपक कोष्ट अपना सब रक्त नहीं निकालता, तब आकुञ्चन शब्द एकदम क्षीण हो जाता है।

हृत्शब्दके गुणोंका परिवर्त्तन

अगर द्वि कपाट किसी कारणसे रुका रहता है (mitral stenosis), तो उस बीमारीमें हृत्पिण्डकी पहली आवाज बहुत थोडी देरतक और थपकी (slapping) की तरह होती है।

यदि हृत्पिण्डका सरल प्रसारण (simple dilatation of the heart) हो, तो हृत्पिण्डकी पहली आवाज, थोडी देरतक ठहरनेवाली, साफ और तेज (clear and sharp) हुआ करती है।

क्षेपक-कोष्ठकी विवृद्धि (Hypertrophy of the ventricle) होनेपर हृत्पिण्डका प्रथम शब्द ज्यादा देरतक रहता है और प्रखर, पर ठोस (accentuated but dull) आवाज ढ्प शब्दकी तरह (thudding) होती है।

अगर महाधमनीके पहले अंशमें अर्बुद हो जाता है (Aneurysm of the first part of the aorta), तो हृत्पिण्डकी दूसरी आवाज घण्टाकी आवाज (Ringing sound) की तरह होती है।

अगर पाकस्थलीमें बहुत वायु हो जाता है, तो हृत्पिण्डकी पहली आवाज खोखली—ढप-ढप (Tympanitic ring) की तरह होती है।

विकृत शब्द-समूह

(Adventitious sounds)

विकृत-शब्दोंका तीन विभाग किया जा सकता है :—

(१) हृदावरक झिल्ली-सम्बन्धीय (Endocardial) ;

(२) रक्तवहा नाड़ी-सम्बन्धीय (Vascular) ; या

(३) हृद्-बाह्य (Exocardial)।

मरमर शब्द (Murmur or bruits)—हृदावरक-झिल्लीके अस्वाभाविक शब्दको मरमर कहते हैं। यह जाँतेकी तरहका हिस-हिस शब्द या फुसफुसाहटकी तरह आवाज है या आरी चलनेके समय जैसी आवाज होती है, वैसा शब्द है। जहाँ यह मरमर शब्द होता है, समझना चाहिये कि उसके पासके किसी कपाटमें या कपाटके निकटके किसी यंत्रमें रोग है अथवा रक्तकी अवस्थामें कोई परिवर्त्तन हो गया है।

मरमर शब्दका कारण—रक्तका लसदारपन, रक्त-प्रवाहकी तेजी, रक्त-प्रवाहका सँकरेसे चौड़े पथमें प्रवाहित होना। यह आखिरी अवस्था

ठीक-ठीक उसी समय उत्पन्न होती है, जब कोई सँकरे द्वारसे रक्त किसी स्वाभाविक गह्वरमें जाता है या जब स्वाभाविक वहिर्द्वार किसी प्रसारित गह्वरमें खुलता है।

एण्डोकार्डियल मरमर (Endocardial murmur)— हृत्पिण्ड या हृत्पिण्डकी किसी धमनीके भीतरसे यदि यह मरमर शब्द आये, तो उसे एण्डोकार्डियल मरमर कहते हैं।

यान्त्रिक बीमारियोंमें जहाँ कपाट तथा उसके आस-पासके स्थानपर रोगका हमला होता है, तो आगेकी ओर रक्त-प्रवाह रुकनेके कारण अथवा किसी कपाटके बन्द रहने अथवा ठीक-ठीक कार्य न करनेके कारण जो रक्त चूता है (leakage), उसीकी वजहसे मरमर शब्द होता है। रुकनेके कारण जो मरमर शब्द होता है, उसे रुकावटसे उत्पन्न मरमर (obstructive murmur) कहते हैं और रक्त पीछेकी ओर चूनेके कारण जो मरमर ध्वनि होती है, उसे **उद्गीरण मरमर** (regurgitant murmur) कहा करते हैं।

मरमरकी परीक्षा करते समय आगे लिखी बातोंपर ख्याल रखें :—

(क) इसके होनेका समय।

(ख) इसकी तेजीका स्थान।

(ग) हृत्प्रदेशमें इसके होनेकी दिशा।

(घ) इसकी प्रकृति।

मरमरका समय—यह हृत्-शिखरकी धड़कन तथा हृत्पिण्डकी आवाजकी तुलनाकर निश्चित किया जाता है इत्यादि।

मरमरकी प्रखरता—यह उसी कपाटके स्थानपर सुनी जाती है, जहाँ कि स्वस्थावस्थामें हृत्पिण्डकी आवाज अच्छी तरह सुनी जाती है। वक्षमें सब जगह कपाटका मरमर शब्द नहीं सुन पड़ता।

मरमरकी प्रकृति—अवरोधात्मक मरमर कर्कश और उद्गीरण मरमर कोमल और झोंकके साथ होते हैं।

१। द्वि-कपाटका मरमर
(Mitral murmur)

यह अवरोधात्मक और उद्गीरणात्मक दोनों ही प्रकारका होता है :—

(क) **अवरोधात्मक मरमर** (Obstructive murmur)—यह क्षेपक-कोष्ठके प्रसारण कालमें होता है। कभी यह द्वितीय शब्दके बाद ही होता है, इस अवस्थामें उसे **प्रसारणात्मक मरमर** (distolic murmur) कहते हैं इत्यादि।

मध्य प्रसारणात्मक—द्वितीय शब्दके बाद कुछ ठहरकर मरमर आवाज होती है, पर प्रथम शब्द होनेके पहले ही यह समाप्त हो जाती है। इसे (mid-distolic murmur) कहते हैं।

पूर्व आकुंचनात्मक मरमर (Pre-systolic murmur)—इसका दूसरा अंगरेजी नाम Auriculo systolic मरमर है। यह केवल ग्राहक-कोष्ठके संकोचनके कारण होता है।

इन सबमें ही सँकरे द्वि-कपाटसे बायें क्षेपक-कोष्ठके चौड़े गह्वरमें रक्त गिरता है ; इसीलिये यह मरमर शब्द होता है। यह पूर्व हृत्-शिखरके स्थानपर या कभी-कभी वक्षोस्थिके स्थानपर सुन पड़ता है। आवाज कर्कश होती है। इस प्रिसिस्टोलिक मरमरके साथ-ही-साथ अकसर द्वि-कपाटका अवरोधात्मक मरमर (obstructive murmur) भी प्रसारणके पहले होता है।

(ख) **उद्गीरणात्मक मरमर** (Regurgitant murmur)—यह क्षेपक-कोष्ठके आकुंचन कालमें होता है या किसी यंत्रके विकार या रक्त-वृद्धि या रक्तमें परिवर्त्तनके कारण होता है। यह शब्द हृत्‌शिखर (apex) से आरम्भ होता है और द्वि-कपाट-प्रदेशमें प्रथम शब्दके स्थानपर होता है। इसकी तेजीकी जगह हृत्‌शिखर है और

इसीकी गति बगलकी ओर तथा बायीं स्कन्धास्थिकी ओर रहता है। शब्द साधारणतः कोमल और प्रवाहकी तरह होता है।

२। महाधमनीका मरमर
(Aortic murmur)

(क) अवरोधात्मक मरमर (Obstructive murmur)—यह क्षेपक-कोष्ठके आकुञ्चन कालमें होता है। यह शब्द या तो किसी कपाटकी बीमारी या महाधमनीके प्रसारणके कारण, महाधमनीके मुखकी ओर जो रुकावट पैदा हो जाती है, उसी कारणसे होता है। इसकी सबसे अधिक जोरकी आवाज वक्षोस्थिके पास द्वितीय उपपर्शुकाके स्थानपर होती है। कभी-कभी यह हार्दिकी धमनी (carotid) से बहुत दूरपर सुन पड़ती है।

(ख) उद्गीरणात्मक मरमर (Regurgitant murmur)—यह क्षेपक-कोष्ठके प्रसारण कालमें होता है। अर्द्धचन्द्राकार कपाट (semilunar valve) के बन्द होनेके समय यह शब्द आरम्भ होता है और रोगवाली जगहपर स्वाभाविक द्वितीय शब्दकी जगहपर होता है। महाधमनीकी जगहपर यह आवाज आती है और खासकर वक्षोस्थिके बायें आधे भागमें तथा ३री पसली और पर्शुका मध्यस्थ-स्थानमें सुनी जाती है। यह हृत्शिखरकी जगहपर भी सुन पड़ती है; यह महाधमनीके आकुञ्चन मरमरकी अपेक्षा कम कर्कश होती है।

कभी-कभी महाधमनी-मुखपर दोहरी मरमरकी आवाज आती है। यह महाधमनी-मुखके वास्तविक अवरोधके कारण नहीं होता; बल्कि कपाटोंके किसी अंशकी गड़बड़ी और कर्कशताके कारण होता है। यह पीछेकी ओर रक्त-स्रावके कारण भी होती है। इसमें कभी-कभी आरी चलने या मारीकी तरह स्पष्ट आवाज आती है।

३। त्रिकपाटका मरमर
(Tricuspid murmur)

(क) अवरोधात्मक मरमर (Obstructive murmur)—यह द्वि-कपाटके स्थानपर ही सुन पड़ता है ; पर इसकी तेजी वक्षोस्थिके निम्न-स्थानमें मालूम होती है।

(ख) उद्गीरणात्मक मरमर (Regurgitant murmur)—इसकी आवाज भी द्वि-कपाटके उद्गीरणात्मक मरमरकी तरह ही होती है। त्रि-कपाटके स्थानपर खूब सुन पड़ती है, यह हृत्पिण्डकी बायीं ओरकी बीमारीके कारण होता है।

४। पल्मोनेरी मरमर
(Pulmonary murmur)

यह आवाज फुस्फुसीयाकी जगहपर खूब सुन पड़ती है। पहली पसलीकी जगहपर साफ आवाज मिलती है तथा यह आकुञ्चन शब्दकी तरहकी होती है। कपाटके पीछेके छल्लेका जब प्रसारण हो जाता है, तभी ऐसी आवाज आती है। ज्वर रक्तहीनता तथा चक्षुवहिरागत गलगण्डमें यह आवाज ज्यादा आती है। डायस्टोलिक पल्मोनेरी मरमरकी आवाज बहुत कम सुन पड़ती है।

एक्सोकार्डियल शब्द
(Exocardial sound)

हृत्पिंड या हृत्पिंडकी किसी धमनीके बाहरसे मरमर शब्द होनेपर उसको **एक्सोकार्डियल मरमर** कहते हैं। यह दो तरहका होता है—(१) पेरिकार्डियल फ्रिक्शन साउण्ड। (२) प्लुरोकार्डियल फ्रिक्शन साउण्ड।

पेरिकार्डियल फ्रिक्शन (Pericardial friction)—एक तरहकी कर्कश घिसने जैसी यह आवाज है। यह उस स्थानपर होती है, जहाँ फेफड़े नहीं हैं। हृदावरण प्रदाहकी पहली अवस्थामें हृदावरणके गात्रकी चिकनाहट जब नष्ट हो जाती है, तब हृद्‌पिण्डके दोनों ही आवरण आपसमें रगड़ खाते हैं। इस समय एक तरहकी खखड़ी आवाज होती है।

यह आवाज वक्षोस्थिके पास चौथ पर्शुका मध्यस्थ स्थान (Intercostal space) में सुनी जाती है। यह आवाज प्रसारण शब्दके कालकी अपेक्षा आकुञ्चन कालमें ज्यादा सुन पड़ती है। कभी कभी यह आकुञ्चनके अन्तिम भागमें हुआ करती है।

प्लुरो-पेरिकार्डियल फ्रिक्शन साउण्ड

अगर पुम्फुसावरण प्रदाह होकर (pleurisy) पुम्फुसावरण (pleura) के किसी भागमें प्रदाह हो जाय और उसका दबाव हृत्पिंडपर पड़े, तो यह आवाज होती है। यह आवाज पेरिकार्डियल फ्रिक्शन साउण्डसे मिलती जुलती है, पर यह लम्बी साँस लेनेपर बढ़ती और साँस छोड़नेके समय घटती है।

जब बहुत रक्त सञ्चय हो जाता है, तब हृदयकी आवाज धीमी और दूरकी आवाजकी तरह हो जाती है।

जब हवा और रस दोनों हो हृदावरण गह्वरमें रहते हैं, तो चिन चिनकी जैसी आवाज होती है।

मरमर सुननेका तरीका और स्थान

रोगीको शान्त-भावसे बैठाकर साँस रोकनेके लिये कहकर मरमर शब्द सुननेकी चेष्टा करना चाहिये ; नहीं तो फुस्फुसावरण या श्वास-नलीसे उत्पन्न आवाज उसमें मिल जायगी और भ्रम हो जायगा। इसके अतिरिक्त जिन स्थानोंपर स्टेथास्कोप रखकर शब्द सुनना चाहिये, वहाँ स्टेथास्कोप लगाकर सुननेके समय इस बातपर ध्यान रखना होगा, कि जिस स्थानपर सबसे जोरकी मरमर आवाज आये, उस स्थानपर अवश्य ही कोई-न-कोई कपाटकी बीमारी है। इसके बाद यह जाँचना होगा, कि इस मरमरकी गति किस ओर है ; हृत्पिंडका प्रथम या द्वितीय शब्द किस समय होता है। यह आवाज कोमल है या कर्कश इत्यादि विषय अच्छी तरह समझनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

५। कितने ही मरमर

(Multiple murmur)

कितने ही रोगियोंमें एकसे अधिक बार मरमर शब्द होता है। जब वे भिन्न-भिन्न स्थान और प्रकृतिके होते हैं, तब उनका अच्छी तरह अध्ययन किया जा सकता है। जब दोसे अधिक मरमर एक साथ होते हैं, तब उनकी प्रखरता अलग-अलग होती है। यह याद रखना चाहिये कि जीवनके अन्तिम दिनोंमें जब रोगीके हृदयकी क्रिया बहुत कमजोर पड़ जाती है, तो रक्तकी तेजी कम पड़ जाती है और मरमर शब्द नहीं मिलता।

६। कानजेनिटल मरमर
(Congenital murmur)

पेटेण्ट फोरामेन ओवेलके कारण भी हृत्पिडके तलदेशमें नाना प्रकारके शब्द हो सकते हैं, यह शब्द दाहिने और बायें ग्राहक कोष्ठमें दबावके प्रभेदके कारण होते हैं। एक प्रकारका कर्कश शब्द आकुञ्चन आरम्भ होकर प्रसारण शब्दके आरम्भ-कालतक होता है। धमनी संयोजक (डक्टस आर्टिरियस) बन्द रहनेके कारण भी यह होता है।

७। हेमिक और वैस्कुलर मरमर
(Hæmic and Vascular murmur)

रक्तहीनताकी वजहसे हृत्पिड और रक्त-वाहिनियोंपर एक प्रकारका शब्द सुननेमें आता है। यह शब्द हृत्पिडके द्वितीय शब्दके साथ अन्याय कपाटोंका शब्द सुननेके स्थानकी अपेक्षा फुस्फुसीया धमनी कपाटका शब्द सुननेकी जगहपर अधिक सुना जाता है। यह आवाज २री बायीं उपपर्शुकाकी जगहपर या ठीक फुस्फुसीया धमनीके बाहरी प्रदेशमें होती है। कितने ही चिकित्सकोंका कहना है, कि फुस्फुसीया धमनीके प्रसारणके कारण यह आवाज होती है। कभी-कभी यह हेमिक मरमर द्वि-कपाट और त्रि-कपाट तथा महाधमनी प्रदेशमें होता है।

हरित्पाडु रोगमें यह आवाज गलेकी जड़में मिलती है। इसे ब्रूट डि डायन्ल भी कहते हैं। यह आवाज मधुमक्खीकी भनभनाहटकी तरह होती है। इसे सुननेके लिये ग्रीवादेशीय शिराके ऊपर जरा उठा हुआ स्टेथास्कोप रखना चाहिये। दबानेपर यह आवाज सुन नहीं पड़ती। जोरसे स्टेथास्कोप दबानेपर स्वस्थ मनुष्यमें भी यह आवाज पैदा हो जाती है।

पाँचवाँ अध्याय

नाड़ी

आयुर्वेद-शास्त्रमें नाड़ी-परीक्षाका बहुत अधिक विस्तार और वर्णन है; परन्तु अन्य चिकित्साओंमें नाड़ीकी परीक्षाकर हृदयकी गति, हृदयकी ताकत, उसकी अवस्था, रक्तवाहिनियोंके प्राचीरकी अवस्था तथा रक्तके दबावकी जाँच की जाती है। शरीरकी कमजोरी, जीवनी-शक्तिका घटना आदि बहुत-सी बातोंका इससे पता लग जाता है।

पहले ही कह चुके हैं, कि हृत्पिण्ड ही सारे शरीरमें रक्तको पहुँचाता है। यह इस तरह होता है, कि बायाँ क्षेपक-कोष्ठ जब सिकुड़ता है, तो लगभग ५-६ औंस रक्त बायें क्षेपक-कोष्ठसे निकलकर उससे लगी महा-धमनीके भीतर चला जाता है और इस तरह शरीरकी सभी कोमल धमनियोंमें उसका झटका लगता है। इस तरह धमनीमें एक प्रकारका स्पन्दन पैदा हो जाता है, यही स्पन्दन नाड़ीकी चाल या गति है।

नाड़ी-परीक्षामें किन-किन बातोंपर लक्ष्य रखना चाहिये

(१) नाड़ीके स्पन्दनकी संख्या।
(२) नाड़ीकी चालकी समता।
(३) नाड़ीका बल।
(४) नाड़ीका आयतन या अवस्था।

नाड़ीका स्थान—"करांगुष्ठमूलाभ्यां धमनी जीवसाक्षिणः।" अर्थात् कलाईमें जहाँ अंगूठेकी जड़ आकर मिली है, उसी स्थानपर नाड़ी देखनेकी चाल है। इसी स्थानपर अंगुली रखकर धमनीके स्पन्दनको अनुभव करना चाहिये। इसीको नाड़ी-परीक्षा या हाथ देखना भी कहते हैं। साधारणतः पुरुषोंका दाहिना और स्त्रियोंका बायाँ हाथ देखा जाता है। इस समय अंगूठेकी जड़में, कलाईकी जगहपर हाथकी तीन अंगुलियाँ—तर्जनी, मध्यमा और अनामिका, अंगुलियोंका अगला भाग रख, कुछ दबाकर नाड़ीकी परीक्षा करनी पड़ती है। इसी स्थानपर नाड़ी (रेडियल आर्टरी) त्वचाके नीचे रहती है और इसी जगहपर स्पन्दन ठीक ठीक अनुभवमें आता है।

इस स्थानके अलावा भी कुछ ऐसे स्थान हैं, जहाँ धमनीका स्पन्दन अनुभवमें आता है। जैसे—कपालोंके दोनों ओरकी नसें, गला, बाँह या पैंडीके पासकी धमनी इनपर दबाव डालनेसे भी यह स्पन्दन मालूम होता है, पर यहाँका स्पन्दन स्पष्ट अनुभवमें नहीं आता। इसीलिये, कलाईपर ही नाड़ी देखनेकी प्रथा है। रोगीको लेटाकर या शान्तिसे बैठाकर नाड़ी देखनी चाहिये।

नाड़ी देखनेका काल—अगर रोगी किसी तरहका परिश्रमकर आया हो, तो उस समय नाड़ी न देखनी चाहिये। निद्रित अवस्थामें, भोजनके समय या भोजनके बाद ही, आग या धूपमें गरमाये रहनेपर, मानसिक उद्वेग या डर जाने बाद, नाड़ी न देखनी चाहिये; क्योंकि इन ऊपर लिखे कारणोंसे नाड़ीकी चालमें फर्क आ जाता है।

स्वस्थ नाड़ी

(Normal pulse)

इसको स्वाभाविक नाड़ी भी कहा करते हैं। जब मनुष्य स्वस्थ रहता है, तो उस समय नाड़ी साधारणतः पूर्ण (moderately full), सम-गतिसे चलनेवाली (uniform) और कोमल रहती है। अर्थात् परीक्षा करनेवालोंकी अंगुलीमें ऐसा मालूम होता है, कि धीमी-प्रवाह (swelling slowly) है। अगर नाड़ीकी समता न रहे, तो समझना होगा कि किसी तरहका विकार पैदा हो गया है।

चित्र न० ६
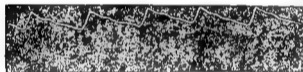
स्वाभाविक नाड़ी (Normal pulse).

स्वाभाविक नाड़ीकी स्पन्दन-संख्या

(Rate of the normal pulse-beat)

तुरन्तके जनमे बच्चेकी नाड़ीका स्पन्दन—	फी—	मिनट—	१४० बार
शिशु अवस्थामें	"	"	१२० बार
बालकपनमें	"	"	१०० बार
जवानीमें	"	"	६० बार
प्रौढ़ावस्थामें	"	"	७८ बार

वृद्धावस्थामें	फी—मिनट—७० बार
बहुत अधिक बुढ़ापा आनेपर	" " ८० बार

नाड़ीका स्पन्दन होता है; पर यह भी ख्याल रखना चाहिये कि शरीर और प्रकृतिके तारतम्यके अनुसार सब मनुष्योंकी नाड़ीकी गणना एक समान नहीं होती, कमी-बेशी हो जाया करती है। सात वर्षकी उम्रतक स्त्री और पुरुषोंकी नाड़ीकी स्पन्दन संख्या लगभग एक समान ही रहती है। इसके बाद पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंकी १०-१५ बार अधिक फी मिनट चला करती है।

समयके अनुसार भी नाड़ीकी चालमें फर्क रहता है, सन्ध्याकी अपेक्षा सबेरे, सोये रहनेकी अपेक्षा जागनेमें अथवा बैठे रहनेपर और बैठनेकी अपेक्षा खड़े रहनेपर नाड़ीकी चाल बढ़ जाया करती है।

कसरत आदि करनेपर भी नाड़ीकी चाल बढ़ जाया करती है, पर यह चाल तबतक ही बढ़ी रहती है, जबतक शरीर गर्म रहता है। इसके बाद जब शरीरकी तेजी जाकर शरीर निस्तेज हो जाता है, तब संख्या घट जाती है।

क्रोध या भयके कारण भी नाड़ीकी स्पन्दन-संख्या बढ़ जाया करती है और जब रोगी मानसिक निस्तेज हो जाता है, तब भी नाड़ीकी संख्या घट जाया करती है।

श्वास-प्रश्वासके साथ नाड़ीका सम्बन्ध

जब मनुष्य पूरी तरह स्वस्थ रहता है, तो एक बार साँस लेने और छोड़नेमें जो समय लगता है, उतने समयमें ४ बार नाड़ीका स्पन्दन होता है। किसी भी बीमारीके कारण श्वास प्रश्वासकी संख्या अगर बढ़ जाती है, तो भी नाड़ी चाल उसी अनुपातसे होती है अर्थात् एक श्वास-प्रश्वासमें चार बार ही नाड़ीका स्पन्दन हुआ करता है। केवल

न्युमोनियामें इसके विपरीत होता है अर्थात् श्वास-प्रश्वासकी कुल संख्यासे नाड़ीकी गति डेढ़गुनी या दुगुनी ही अधिक होती है इत्यादि।

शरीरकी गर्मीके साथ नाड़ीका सम्बन्ध

जब नाड़ीकी स्पन्दन-संख्या स्वाभाविककी अपेक्षा दस बार अधिक होती है, तो थर्मामिटरसे एक डिगरी गर्मी बढ़ जाती है ; पर यदि इसके विपरीत नाड़ीकी स्पन्दन-संख्या तो बढ़ती जाये, पर शरीरकी गर्मी न बढ़े, तो समझना होगा, कि **हृत्पिंड दिनोंदिन क्षीण** होता जाता है। सान्निपातिक ज्वर, मस्तिष्कावरण-प्रदाह, हृदावरण-प्रदाह (pericarditis) इत्यादि बीमारियोंके कारण पैदा हुए ज्वरमें नाड़ीकी स्पन्दन-संख्या बढ़नेके बदले घट जाया करती हैं इत्यादि।

नाड़ीका स्पन्दन बढ़ना

(Increased rate of pulse-beat)

ज्वरमें तो नाड़ीकी स्पन्दन-संख्या बढ़ती ही है, पर महाधमनीका प्रत्यावर्त्तन (aortic regurgitation) अथवा द्विकपाटका प्रत्यावर्त्तन (mitral regurgitation) इत्यादि रोग, हिस्टीरिया, रक्तहीनता या दुर्बलता प्रभृतिमें नाड़ीकी स्पन्दन-संख्या बढ़ जाया करती है।

इसके अलावा, बेलेडोना, नाइट्राइटिस (Nitritis) इत्यादि दवाओंके सेवनकी वजहसे भी नाड़ीकी स्पन्दन-संख्या बढ़ जाया करती है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है, कि हृत्पिण्डका कोई रोग नहीं रहता, पर स्पन्दन बराबरके लिये या कुछ दिनोंके लिये तेज हो जाया करता है ; इसको टैकिकार्डिया (Tachicardia) कहते हैं। इसमें नाड़ीकी स्पन्दन-संख्या १०० से १५० तक हो जाया करती हैं।

नाड़ीकी स्पन्दन-संख्याका घटना

(Decreased rate of pulse-beat)

कितनी ही बार कमजोरी, बहुत दिनोंतक कोई बीमारी आदि भोगनेके कारण नाड़ीकी स्पन्दन-संख्या घट आया करती है। वायुस्फीति (emphysema), इन्फ्लुएञ्जा, सान्निपातिक ज्वर, पाण्डु रोग, मूत्र-विकार, अधकपारीका सर-दर्द, मस्तिष्कावरण प्रदाह, सन्यास, सर्दी-गर्मी, छोटी सन्धियोंका वात, पुरानी मन्दाग्नि तथा हृद्-अवरुद्धता (complete heart block) प्रभृति रोगोंमें नाड़ीकी स्पन्दन-संख्या घट आया करती है।

धीमा हृत्पिण्ड

(Bradicardia)

जब किसी तरहकी बीमारीके कारण अथवा हृत्पिण्ड-सम्बन्धी कोई बीमारी न रहनेपर भी हृत्पिण्डकी क्रिया घट जाया करती है, तो उसे Bradicardia कहते हैं। ऐसे हृत्पिण्डवालोंकी नाड़ी मिनटमें ४०-५० बार चलती है।

नाड़ीकी विभिन्न गतियाँ

नाड़ीकी स्पन्दन-संख्या घटने बढ़नेके अनुसार नाड़ीका वेग या गति भी घटा-बढ़ा करती है।

द्रुत नाड़ी (Quick-pulse)—ऐसी नाड़ी परीक्षककी अंगुलीमें जोरसे आघात करती है।

तीक्ष्ण नाड़ी (Sharp pulse)—ऐसी नाड़ी परीक्षककी अंगुलीमें तीक्ष्ण-भावसे आघात करती है।

मृदु नाड़ी (Slow pulse)—ऐसी नाड़ी परीक्षककी अंगुलीमें धीरे-धीरे आघात करती है।

नाड़ीकी लय या समता

नाड़ीकी चाल सम होनी चाहिये अर्थात् समान अन्तरपर उसका स्पन्दन होना चाहिये। नाड़ीकी गति ऐसी रहती है, कि हृत्पिण्डके प्रथम शब्दके बाद ही नाड़ीका स्पन्दन होता है, फिर नाड़ीका विराम होता है ; ऐसी भी बराबर हुआ करता है। नाड़ीका स्पन्दन स्वाभाविक है या अस्वाभाविक, यह हाथसे नाड़ी-परीक्षाकर या स्फिगमोग्राफ नामक यंत्र द्वारा जाँचा जा सकता है।

जिन मनुष्योंके **हृत्पिण्डका संकोचन अनियमित** होता है (arrhyimia), उनकी नाड़ी असम रहा करती है और नाड़ीका स्पन्दन कभी जोरसे, कभी क्षीण और कभी रुक-रुककर होता है।

अतिरिक्त आकुञ्चन (Extra systole)—हृत्पिण्डके आकुञ्चनके बाद कभी-कभी एक और भी धीमा आकुञ्चन होता है, उसको "अतिरिक्त आकुञ्चन" कहते हैं। ऐसा होनेके कारण तम्बाकू वगैरह ज्यादा खाना, बहुत अधिक मात्रामें चाय पीना, हृत्पिंडकी मांस-पेशीकी बहुत उत्तेजना आदि रहता है, इसमें भी नाड़ी अनियमित चला करती है।

द्वि-स्पन्दित नाड़ी (Bigeminal pulse)—अगर नाड़ीका लगातार दो बार स्पन्दन होता हो, तो उसे द्वि-स्पन्दित नाड़ी कहते हैं। यह तब होता है, जब हृत्पिण्डके अतिरिक्त आकुञ्चनके बाद दीर्घ विराम होता है।

त्रि-स्पन्दित नाड़ी (Trigeminal pulse)—हृत्पिण्डके हरेक स्वाभाविक आकुञ्चनके बाद दो अतिरिक्त और उसके बाद देरतक

विराम—यदि ऐसा होता हो, तो नाड़ीका तीन बार स्पन्दन होता है ; इसीको त्रि-स्पन्दित नाड़ी कहते हैं।

सविराम नाड़ी (Intermittent pulse)—इसका कारण यह है, कि हृत्पिण्डका स्वाभाविक आकुञ्चन बीच-बीचमें रुक जाता है, इसीका यह नतीजा होता है, कि नाड़ी कई बार स्पन्दित होनेके बाद एक बार स्पन्दित नहीं होती।

परिवर्त्तनशील नाड़ी (Pulsus alternans)—इसमें नाड़ीकी स्पन्दन-शक्ति कम या अधिक हुआ करती है। हृत्पिण्डकी कमजोरीकी वजहसे ऐसा हुआ करता है, इसीको परिवर्त्तनशील नाड़ी कहते हैं।

विपरीत नाड़ी (Pulsus paradoxus)—अगर साँस छोड़नेके समयकी अपेक्षा साँस लेनेके समय नाड़ीका स्पन्दन क्षीण हो जाये अथवा एकदम रुक जाये, तो विपरीत नाड़ी कहते हैं।

नाड़ीका आयतन
(Volume of the pulse)

नाड़ीका आयतन—हृत्पिण्डके सकोचनके समय बायें क्षेपक-कोठसे महाधमनीमें जो रक्त जाता है, उसीपर नाड़ीका आयतन निर्भर करता है। इसमें नीचे लिखे नाड़ियोंका प्रकार दिखाई देता है :—

पूर्ण नाड़ी (Full pulse)—ऐसी नाड़ी परीक्षककी अंगुलीमें मोटी मालूम होती है। हृत्पिण्ड जब जोरसे धड़कता है, तब ऐसी ही नाड़ी रहती है।

स्थूल नाड़ी (Large pulse)—यह परीक्षककी अंगुलीमें बहुत ही मोटी मालूम होती है। जब हृत्पिण्ड बहुत जोर-जोरसे धड़कता है, तब ऐसी नाड़ी हो जाती है।

सूक्ष्म नाड़ी (Small pulse)—ऐसी नाड़ी परीक्षककी अंगुलीमें पतली मालूम होती है। हृत्पिण्डकी क्रिया घटनेपर ऐसी नाड़ी हो जाती है।

सूतकी तरह नाड़ी (Thready pulse)—ऐसी नाड़ी परीक्षककी अंगुलीमें सूतकी तरह मालूम होती है। जब हृत्पिण्डकी क्रिया बहुत घट जाती है, तब ऐसा होता है।

नाड़ीका बल
(Force of the pulse)

नाड़ीके स्पन्दनके समय नाड़ीपर अंगुली द्वारा दबाव डालकर नाड़ीका स्पन्दन रोक दिया जाता है, इससे नाड़ीकी शक्ति या रक्तके दबावका पता लग जाता है। जितना ही अधिक रक्तका दबाव होगा, नाड़ीका स्पन्दन रोकनेमें उतनी ही शक्तिका प्रयोग करना होगा और जितना ही कम होगा, उतनी ही कम ताकत नाड़ीके रोकनेमें लगेगी।

यह परीक्षा **स्फिग्मोमैनोमीटर** (Sphygmomanometer) नामक यंत्र द्वारा होती है। पूर्ण नाड़ीका बल और रक्तके दबावका ठीक-ठीक पता लगता है। इसमें मिलिमिटर नामक मापका चिह्न लगा रहता है।

स्वस्थ मनुष्यकी विश्राम अवस्थामें ऊपरी संख्या ११५ से १३५ और बच्चोंकी ६० से १०० मिलिमिटर होती है। इसके जाँचनेका तरीका यह है, कि जितनी उमर हो, उसमें ८० संख्या जोड़कर जो योगफल होता है, उतनी ही संख्यामें मिलिमिटर इस देशके मनुष्योंके रक्तका स्वाभाविक होता है। इससे अधिक संख्या अगर चढ़ जाये तो समझना होगा, कि रक्तका दबाव बढ़ गया है। कम संख्या मिलिमिटर हो तो रक्तका दबाव घट गया है।

रक्तके दबावके तारतम्यके अनुसार तीन प्रकारकी नाड़ी होती है :—

बलवती नाड़ी (Strong pulse)—नाड़ीको दबानेपर, परीक्षककी अंगुलीमें ऐसी नाड़ी बलवान मालूम होती है।

दुर्बल नाड़ी (Weak pulse)—परीक्षककी अंगुलीमें कमजोर मालूम होनेवाली नाड़ी।

लुप्त नाड़ी (Pulse-less)—इसमें परीक्षककी अंगुलीमें नाड़ीका अनुभव ही नहीं होता।

नाड़ीकी दृढ़ता या तनाव
(Tension of the pulse)

यह नाड़ीकी स्थिति-स्थापकता शक्तिपर निर्भर करता है। इसीके अनुसार नाड़ी कड़ी या कोमल होती है ; नाड़ीको एक ओरसे दूसरी ओरतक, स्पन्दनोंके बीचमें, एक सिरेसे दूसरे सिरेतक रगड़ देनेसे इस दृढ़ताका पता लग जाता है इत्यादि।

चित्र नं० १०

दृढ़ नाड़ी (High tension)

अधिक दृढ़ता (High tension of the pulse)—अगर ज्यादा दृढ़ता रहती है, तो परीक्षककी अंगुलीमें नाड़ी डोरीकी तरह कड़ी मालूम होती है ; इसे कठिन नाड़ी (heard pulse) भी कहते हैं। इसीका दूसरा नाम दुर्दाप्य नाड़ी (incompressible

pulse) है ; क्योंकि ऐसी नाड़ी चिकित्सककी अंगुलीसे दबती नहीं। **ब्राइट्स डिजीजमें** नाड़ीकी अधिकता बढ़ जाती है ; बुढ़ापेमें अक्सर ऐसा होता है।

दृढ़ताका घटना (Low tension of the pulse)—ऐसी नाड़ी परीक्षककी अंगुलीमें कोमल मालूम होती है। इसीलिये इसे कोमल नाड़ी (soft pulse) कहते हैं ; इसीका दूसरा नाम चाप्य-नाड़ी (compressible pulse) है। उमर जितनी कम रहती है, दृढ़ता भी उतनी ही कम रहती है।

जल हथौड़ीकी चोटकी तरह नाड़ी (Water-hammer pulse)—इसको कोरिगेन्स पल्स (corrigans pulse) और कम्पित नाड़ी (jerking pulse) भी कहते हैं। ऐसी नाड़ीका परीक्षककी अंगुलीमें झटका लगता है और फिर तुरन्त गायब हो जाता है। **महाधमनीके प्रत्यावर्त्तन** (aortic regurgitation) की बीमारीमें ऐसी नाड़ी हो जाया करती है। रोगीका हाथ ऊपर उठाकर ऐसी नाड़ीकी परीक्षा करनी होती है।

तरंगायित नाड़ियाँ

द्वि-तरंगायित नाड़ी (Dicrotic pulse)—इसमें नाड़ीके प्रधान स्पन्दनके बाद ही एक हल्का स्पन्दन और भी होता है। इसी वजहसे इसे द्वि-तरंग नाड़ी कहते हैं। अंगुलीसे परीक्षा करनेपर लगातार ऐसा ही मालूम होता है। इससे पता लगता है, कि कोई क्षय रोग हुआ है या रक्तहीनता और सान्निपातिक ज्वरमें भी ऐसा ही होता है। स्फिगमोग्राफमें इसका ठीक-ठीक पता लगता है।

त्रि-तरंगयुक्त नाड़ी (Tricrotic pulse)—इसमें नाड़ीकी उठती हुई लहरके साथ एक रेखा ऊपरकी ओर उठकर इस लहरके नीचे

गिरनेके साथ ही-साथ ढालकी तरह अंकित हो जाया करती है और इस ढाल सी रेखाके बीचमें छोटी-छोटी तीन तरगें दिखाई देती हैं।

रक्तका चाप
(Blood pressure)

रक्तका शरीरमें दौरान होता है, पर यही जब बढ जाता है तो तकलीफ होने लगती है। वृद्ध तथा जो अधिक मांस-मछली खाते हैं, उनके खूनका चाप अधिक रहता है। इसके अलावा श्वास-रोध, मूत्र-विकार, सूतिकाक्षेप, सीसाका विष शरीरमें प्रवेश करना तथा मायेकी खोलमें किसी कारणवश खूनका ज्यादा जाना प्रभृति कारणोंसे रक्तका चाप (blood pressure) बढ जाया करता है।

आगे जिस **स्फिगमोमैनोमिटर** नामक यन्त्रका वर्णन किया गया है, उससे रक्तके चापकी परीक्षा बहुत सरलतापूर्वक हो जाती है। इससे केवल रक्तका बढा, स्वाभाविक या घटा हुआ चाप ही नहीं मालूम होता, बल्कि धमनियोंमें इसका कितना दबाव है, इसका भी ज्ञान हो जाता है।

इस देशके मनुष्योंका साधारणतः रक्तका दबाव कितना रहता है, यह पहले बताया जा चुका है।

स्फिगमोमैनोमिटर द्वारा रक्तके चापकी परीक्षा
(*Sphygmomanometer*)

यह एक प्रकारका ऐसा यन्त्र है, जिसमें एक ओर तो एक वह अंश रहता है, जिसमें शीशेकी थर्मामिटर-सी नलीमें पारा रहता है। यह पारा चढता-उतरता है। इसके अलावा एक मोटे कपडेकी पट्टी-सी रहती है, जिसे बाँहपर बाँध दिया जाता है। इन दोनोंसे ही रबरकी

नली जुड़ी रहती है तथा एक गेंद-सा रहता है, जिसको दबानेसे हवा इस नलीकी राहसे जाकर एक ओर तो बाँहपर दवाव डालती हैं, दूसरी ओर पारा चढ़ता-उतरता है। उस गेंद या वेल्वपर एक धातुका भाग रहता है, जिससे हवा निकाल देनेकी सुविधा होती है, यह वेल्व या कपाट है। बाँहपर जो पट्टी बाँधी जाती है, वह चौड़ी होनी चाहिये, पतली पट्टी तकलीफ देती है। यंत्रके इन तीनों भागोंसे अथवा पारा, बाँहकी पट्टी और वेल्वमें रबरकी मजबूत नली रहती है।

स्फिगमोमैनोमिटरके व्यवहारका तरीका—रोगीको आरामसे बैठाकर या लेटाकर परीक्षा करनी चाहिये। मैनोमिटर (वह भाग जिसमें पारा रहता है) इस ढंगसे रखना चाहिये कि छातीकी समतामें ही रहे। खाली बाँहकी पट्टीको ऊपर बाँहपर लपेट देना चाहिये।

जाँचके दो तरीके हैं:—एक स्पर्शकर (Palpatory method) और दूसरा कानसे सुनकर (Auditory method)।

स्पर्शकर देखनेका मतलब है—नाड़ी देखते रहना। आकुञ्चनकालके रक्तके दवावके लिये बाँहकी पट्टीमें वेल्वको बार-बार दबाकर तबतक हवा भरते रहना चाहिये, जबतक कि नाड़ी मिलती है। जब नाड़ी अंगुलीके नीचे न मालूम हो, तब बन्द कर देना चाहिये। इसके बाद वेल्वको दबाकर हवाको धीरे-धीरे निकलने देना चाहिये, जिसमें कि बाँहका दवाव घट जाये। इस समय नजर मैनोमिटरपर रहे; पर साथ ही नाड़ीपर भी लक्ष्य रखना चाहिये। ज्योंही नाड़ी मिलने लगे, पारा कहाँतक चढ़ा है, वह नम्बर देख लेना चाहिये। अब इस समय जो संख्या दिखाई देगी, वह हृत्पिण्डके आकुञ्चन-कालके रक्तका दवाव (systolic blood pressure) है; इसमें यदि कोई सन्देह हो, तो फिर परीक्षा कर लेनी चाहिये।

(२) **आकर्णनका तरीका**—इससे आकुञ्चन और प्रसारण दोनों ही कालके रक्तका दवाव मालूम हो जाता है (systolic and

diastolic pressure)। नाड़ी देखनेके बदले, सुनने स्टैथास्कोपका चेस्ट पीस बाँहपर एकदम बाँहकी पट्टी नीचे रखिये और धमनीकी आवाज सुनिये। इसके बाद हवा भरकर स्वाभाविकके ऊपर दबाव बढ़ा दीजिये। यह तबतक, जबतक कि कोई आवाज न सुन पड़े। इसके बाद वेल्व खोल दीजिये और धीरे धीरे हवाका दबाव तबतक कम करते जाइये, जबतक कि नाड़ीकी गतिकी हल्की आवाज पहली बार सुन पड़े। इसी समय तुरन्त देख लीजिये कि कहाँतक पारा चढ़ा है। यह आकुञ्चन कालका रक्तका दबाव हुआ। अब ज्यों-ज्यों पारा गिरता जाये, बराबर सुनते जाइये। कभी जोरके धक्के, कभी मरमर, कभी थप थपकी आवाज आयेगी ; पर इन सबपर ख्याल करनेकी कोई जरूरत नहीं है, हवा धीरे-धीरे निकलने दीजिये। आवाज एकाएक कम पड़ जायगी और ऐसा हो जायगा कि सुन न पड़े ; इसी समय एक बार पारा कहाँतक उठा है, देख लीजिये। यह प्रसारण कालका दबाव (diastolic pressure) है।

आकुञ्चन कालके दबावके आँकड़े प्रायः दोनोंमें एक ही आते हैं ; परन्तु आकर्णनके तरीकेसे आयी हुई संख्या ५ से १० मिलिमिटर ज्यादा आती है। साधारणतः आकर्णन प्रणाली ही अच्छी होती है ; क्योंकि इससे आकुञ्चन प्रसारण दोनों ही कालका दबाव मालूम हो जाता है।

स्वाभाविक रक्तका चाप—स्वस्थ जवान मनुष्योंका १०० से १४० मिलिमिटर ऊँचा आकुञ्चन कालका दबाव रहता है और प्रसारण-कालका ६० से ६० मिलिमिटर। बच्चोंका इससे कम अर्थात् ६० से ११० होता है। अवस्था ज्यों ज्यों ज्यादा होती जाती है, त्यों-त्यों यह बढ़ता है। आकुञ्चन और प्रसारण-कालके रक्तके दबावका अन्तर ३० से ६० रहता है। इससे ज्यादा हो तो अधिक ऊँचा समझना चाहिये और कम हो, तो घटा जानना चाहिये।

अस्वाभाविक रक्तका चाप (High blood pressure)— पुराना मसानेका प्रदाह, धमनियोंका प्रसारण तथा स्त्रियोंके रजःस्रावके समय रक्तका दवाव बढ़ जाया करता है। यदि २०० या इससे ऊपर मिलिमिटर रक्तका दवाव हो, तो चिन्ताकी बात है।

रक्तके चापका घटना (Low blood pressure)—किसी तरहका मानसिक आघात एकाएक लगने (shock), जीवनी-शक्तिकी अवसन्नता, हृत्पिण्डकी कितनी ही बीमारियाँ, यक्ष्मा, एडिसन्स डिजीज और रोगी स्वास्थ्यकी वजहसे धातुगत विकार (cachexia) प्रभृति कारणोंसे रक्तका दवाव घट जाता है। यह ११० से ८० मिलिमिटर या और भी कम हो जा सकता है।

इस तरह स्वाभाविक और अस्वाभाविक रक्तका दवाव है, इसको जाँच लेना चाहिये।

कुछ साधारण हृद्-रोग, उनके लक्षण और चिह्न

हृद्वेस्ट-प्रदाह (Pericarditis)—इसमें श्वास-शब्दके अलावा एक प्रकारकी घिसने या मलनेकी तरह खस-खस आवाज हृदग्र-प्रदेशमें आती है। नाड़ी तेज, ज्वर और चेहरा पीला रहता है; साँस रुकी रहती है और कलेजेमें दर्द रहता है।

यदि **हृदावरणमें रस-संचय** भरपुर मात्रामें रहता है, तो रगड़की आवाज गायब हो जाती है, एक वृहत् त्रिकोण स्थानमें धीमी आवाज आती है। हृत्शिखरका आघात शब्द नहीं-सा ही सुन पड़ता है और हृदयकी आवाज भी बिगड़ी रहती है।

नया हृत्पिंड-प्रदाह—यह वातज ज्वरमें होता है, इसमें हृत्पिंडकी मांस-पेशी और हृद्-गह्वरकी झिल्ली दोनोंका ही प्रदाह हो जाता है।

ज्वरकी अपेक्षा हृत्पिण्डकी बढ़ी हुई तीव्र गति ही इसका सबसे प्रत्यक्ष चिह्न है। इसमें रक्तहीनता भी होती है। वातज गुटिकाएँ कोहनी और घुटनेमें मिलती हैं। हृत्शिखर-प्रदेशमें आकुञ्चन मरमर शब्द सुन पड़ता है और कभी-कभी हृत्पिण्ड बन्द (हार्ट-फेलियोर) होनेकी भी सम्भावना रहती है।

तरुप्तुत हृदन्तरवेस्ट-प्रदाह (Infective indocarditis)—बहुत दिनोंकी पुरानी हृत्पिण्डकी बीमारीमें हृद्कपाटपर रोगका आक्रमण हो जाता है। ऊँचा जोरका बुखार, परिवर्तनशील मरमरकी आवाज, बढ़ी हुई प्लीहा, शोताद, समवरोधन प्रभृति इसके प्रधान चिह्न हैं।

द्वि-कपाटकी अवरुद्धता (Mitral stenosis)—इसमें अक्सर चेहरा नीला पड़ जाता है, परिश्रम करनेपर श्वासाल्पता हो जाती है। इसमें *पूर्व आकुञ्चन मरमर शब्दके बाद कम्पन शब्द होता है। प्रथम* शब्द जोरका होता है ; दूसरा शब्द अक्सर फुस्फुसके स्थानपर दोहरा होता है। रोग बढ़नेपर हृद्रोधका उपक्रम हो जाता है, हृत्शिखरकी धड़कन आगेकी ओर बढ़ जाती है और हृत्शिखर-प्रदेशके स्थानपर प्रसारणशील मरमर शब्द होता है।

द्वि-कपाटकी अपूर्ण क्रियाका होना—हृत्-शिखरमें कोमल आकुञ्चन मरमर शब्दकी अपेक्षा हृत्कपाटकी बीमारीमें यह स्पष्ट मालूम होता है। इसके रोगियोंमें वातका इतिहास, परिश्रम करनेपर श्वास-कष्ट, कड़ा आकुञ्चन, मरमर शब्द तथा हृद्शिखरके आघातके स्थानपर आकुञ्चन कम्पन मालूम होता है।

महाधमनीकी क्रिया पूरी न होना—यह नया वात, उपदंश तथा मेदमय अर्बुदकी वजहसे होता है। रोगी अक्सर पीला रहता है और उसकी धमनियाँ इस तरह स्पन्दित होती हैं, कि प्रत्यक्ष दिखाई देती हैं। केशिकाओंका स्पन्दन स्पष्ट दिखाई देता है। नाड़ी कड़ी और बन्द हो जाने-जैसी अवस्था रहती है। हृत्शिखरका आघात नीचे

और बाहरकी ओर सरक जाता है। इसका प्रधान चिह्न है—कोमल प्रसारण-मरमर शब्द। यह द्वितीय शब्दके बाद ही तथा महाधमनी-प्रदेशमें स्पष्ट सुन पड़ता है और वक्षोस्थिके निचले बायें किनारेपर भी सुन पड़ता है।

महाधमनीकी अवरुद्धता—महाधमनी-प्रदेशमें अगर कोमल आकुञ्चन मरमर शब्द मालूम हो, तो यह नहीं समझ लेना चाहिये, कि महाधमनीका अवरोध हो गया है। महाधमनी-प्रदेशमें सिस्टौलिक कम्पन मालूम होता है और कर्कश मरमरकी आवाज सुन पड़ती है। महाधमनीका द्वितीय शब्द कमजोर होता है और कभी-कभी सुन नहीं पड़ता तथा आकुञ्चन शब्दके अलावा महाधमनीका प्रसारण मरमर शब्द भी सुन पड़ता है।

हृद्वेष्टके रोग—इसका पता हृत्-कपाटके रोगकी तरह स्पष्ट नहीं मालूम होता। कभी-कभी हृत्शूल या हार्ट-फेलियोरके लक्षणसे ही इसका पता लगता है। हृत्पिण्ड विवर्द्धित रहता है और हृत्शिखर-प्रदेशमें आकुञ्चन मरमर शब्द सुन पड़ता है। हृद्-अवरोध या फेफड़ेके तलदेशकी सूजन, यकृतकी विवृद्धि और शोथ मौजूद रहता है इत्यादि।

हृत्पिंडका अर्बुद—वक्षके ऊपरी भागमें जब स्पन्दनशील अर्बुद हो जाता है, कितने ही रोगियोंमें दूसरे दाहिने या बायें पर्शुका-मध्यस्थ स्थानपर एक स्वाभाविक स्थानमें धीमी आवाज आती है; हृत्शिखरका आघात स्थानच्युत रहता है। यह महाधमनीकी क्रिया सम्पूर्ण न होनेके कारण होता है।

छठा अध्याय

श्वास-प्रश्वास संस्थान

इसमें दोनों फेफड़े, गलकोष, कंठनाली या स्वर-यन्त्र, वायुनली, श्वासनली या वायुनली, श्वासोपनाली, सूक्ष्मतम-श्वासोपनाली, वायु-पथ, वायु-कोष, लघु-खड और वृहत् खड आ जाते हैं। श्वास-प्रश्वास संस्थानके रोगोंकी जानकारीके लिये इनकी जानकारी आवश्यक है।

फेफड़ा या फुस्फुस (Lungs)—ये दो होते हैं। वक्ष गह्वरमें हृत्पिण्डके स्थानके सिवा और प्रायः समूचा स्थान फेफड़ोंसे भरा है। ये वक्ष गह्वरमें हृत्पिडके दोनों ओर रहते हैं और इनकी स्थितिके अनुसार इन्हें दाहिना और बायाँ फेफड़ा कहते हैं। दोनों फेफड़ोंका रग कुछ धुमैला होता है और ये स्पजकी तरह सिकुडे होते हैं।

दाहिने फेफड़ेकी सीमा (Borders of the right lung)—इसकी सम्मुख-सीमा सामनेकी ओर, नीचेकी तरफ और हृत्शिखरकी मध्य-रेखाकी ओर है, जो पहली पर्शुकाके ग्रीवाके स्थानपर है ; पीछेकी ओर यह ७वीं ग्रीवादेशीय पर्शुकाकी जगहतक है। वक्षोस्थिके पीछे दूसरी पर्शुकाके सम स्थानपर, यह करीब-करीब मध्य-रेखातक पहुँच जाती है और नीचे उतरती हुई छठी उपपर्शुकातक पहुँच जाती है, जहाँसे घूमकर यह निचली सीमा तैयार कर देती है। इसकी निचली सीमा दाहिनी पैरेस्टरनल लाइनमें छठी पसलीके ऊपरी भागको समतामें जाकर मिल जाती है, यहाँतक कि दसवें या ग्यारहवें पर्शुका-मध्यस्थ स्थानतक चली आती है।

बायाँ फेफड़ा—हृत्शिखरसे लेकर ४थी उपपर्शुकाके सामनेतक इसकी सम्मुख-सीमा दाहिने फेफड़ेतक चली गई है। यहाँ यह कुछ आगेकी ओर झुक जाती है और टेढ़ी-मेढ़ी होकर ६ठी पसलीतक जा

चित्र नं० ११
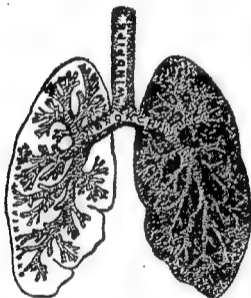
श्वासनली—Wind pipe. वायुनली—Bronchi.
श्वासोपनली—Bronchial tubes.

पहुँचती है। यहाँसे निचला किनारा पीछेकी ओर जाता है। दोनों फेफड़ोंका निचला किनारा उदरकी ओर—और भीतर धँसे हुएकी तरह है।

फुस्फुस खंड (Lobes)—दाहिने फेफड़ेमें तीन और बायेंमें दो खड होते हैं। ये खड मास-पेशियोंके एक-एक थक्केकी तरह हैं। इनमें दो अंश होते हैं:—निम्न और ऊर्द्ध।

फुस्फुस क्षुद्र खंड (Lobules)—बहुतसे वायु-कोष एक साथ मिलकर जो छोटे छोटे मांसके थक्के बन गये हैं, उनको क्षुद्र फुस्फुस खंड कहते हैं।

गलकोष (Pharynx)—जीभकी जड़के पीछेवाले भागमें, मास-पेशियोंका बना, लगभग ५ इञ्च लम्बा एक गह्वर है; यह गलकोष है। श्वास-वायु, नासा-रन्ध्रसे होता हुआ पहले इसी गलकोषमें जाता है। इसके बाद गलकोषके सामनेकी एक कंठनलीके छेदसे बराबर वायुनली, श्वासनली, सूक्ष्म-श्वासनलियोंके भीतरसे होता हुआ फुस्फुस वायु-कोषमें प्रवेश करता है।

स्वर-यंत्र या कंठनाली (Larynx)—गलकोषके सामने वायु-नलीका एक भाग लगा हुआ है। गलकोष और स्वर-यन्त्र या कठनालीके एक छेदसे इसका सयोग है। कठनाली बोलने या स्वर निकालनेका एक यन्त्र है।

टेंटुआ (Trachea)—यह एक खोखला नल है। इसकी लम्बाई ४½ इञ्च और चौड़ाई प्रायः एक इञ्च होगी। यह कण्ठनालीके नीचेवाले भागसे आरम्भ होकर गलेके सामनेवाले भागसे होती हुई दोनों ओरकी दूसरी पञ्जरास्थि और वक्षोस्थिके सन्धि स्थानतक आयी है। इस गह्वरमें आकर यह दो शाखाओंमें बँट गई है। यह आवश्यकता-नुसार सिकुड़ और फैल सकती है, इसके भीतरसे श्वास-प्रश्वास वायुका आवागमन होता है।

श्वासनली या वायुनली (Bronchi)—ऊपर वायुनलीका जो वर्णन हुआ है और उसकी दो शाखायें जो नीचे अभी बतायी हैं, वे ही श्वासनलियाँ हैं। प्रत्येक वायुनलीके साथ एक एक फेफड़ा मिला

है। इसमें दाहिनी श्वासनली (right bronchus) बायीं श्वासनली (left bronchus) की अपेक्षा छोटी होती है, पर कुछ चौड़ी रहती है। इन दोनों श्वासनलियोंसे फेफड़ोंमें वायुका आवागमन होता है।

श्वासोपनाली (Bronchioles)—ये दोनों श्वासनलियाँ फेफड़ोंमें जाकर असंख्य शाखा-प्रशाखाओंमें बँट गयी हैं, ये ही श्वासोपनलियाँ कहलाती हैं, इनका भी काम फेफड़ोंमें वायु पहुँचाना और ले आना है।

सूक्ष्मतम श्वासोपनाली (Terminal bronchioles)—ये सूक्ष्म नालियाँ जब और भी सूक्ष्म हो जाती हैं, तब उन्हें सूक्ष्मतम श्वासोपनाली कहते हैं।

वायु-पथ—इन सबका सम्मिलित नाम श्वास-पथ (air passage) है।

चित्र नं० १२
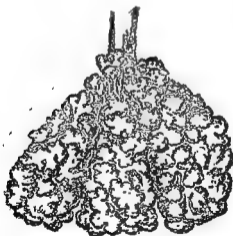
फुप्फुस-कोष-गुच्छ—Lung-sacs.

फुस्फुस-कोष-गुच्छ—प्रत्येक श्वासोपनालीके किनारे छोटे छोटे अगूरके गुच्छेकी तरह कितने ही कोष या थैलियाँ हैं, इन्हें फुस्फुस कोष-गुच्छ (lung-sacs) कहते हैं। ये बहुत छोटे-छोटे होते हैं और हमेशा वायुसे भरे रहते हैं। ये सब आपसमें मिले हुए हैं। इसीलिये इनमेंसे प्रत्येक कोषको वायु कोष (air cells) कहते हैं। हृत्पिण्डके फुस्फुसीया धमनी (pulmonary artery) आकर असंख्य कैशिक नाड़ियाँ वायु कोषोंके चारों ओर लगी रहती हैं। इनके दूसरे किनारे फुस्फुसीया शिराके साथ मिले हैं।

फुस्फुसावरण या फुस्फुसवेष्ट (Pleura)—यह फेफड़ोंको ढकनेवाला एक पर्दा है। यह बहुत पतला और कोमल पर्दा होता है। इसके दो स्तर होते हैं। एक स्तर फुस्फुस-गात्रसे और दूसरा पञ्जरेसे मिला रहता है। इसका भीतरी भाग चिकना होता है और एक तरहका रस निकाला करता है, इसीलिये फेफड़ेमें रगड़ नहीं पड़ती।

वक्ष परीक्षामें श्वास-प्रश्वास यन्त्रोंकी परीक्षा करते समय इन सबकी ही परीक्षाकर जाँचा जाता है, कि रोग किस स्थानपर छिपा हुआ है।

श्वास-प्रश्वास संस्थानकी परीक्षामें भी दर्शन, स्पर्शन, आकर्णन, परिमापन प्रभृति परीक्षाकी सभी प्रणालियाँ काममें लानी पड़ती है।

१। दर्शन
(Inspection)

दर्शन द्वारा—

(क) **वक्षका आकार**—वक्षके गठनमें कोई विकार है या नहीं यह देखा जाता है।

(ख) **वक्षकी गति**—साँस लेनेके समय—वक्षकी गति कैसी रहती है ? श्वास प्रश्वासकी संख्या, श्वास प्रश्वासके समयका अन्तर,

श्वास-प्रश्वास किस ढंगका होता है, वक्ष कितना फैलता है प्रभृति बातोंपर ध्यान देकर रोग निर्णय करना पड़ता है।

(क) वक्षका आकार

वक्षका आकार—इसके सम्बन्धमें द्वितीय अध्यायमें बताया जा चुका है, कि कितने प्रकारके और कैसे-कैसे परिवर्त्तित वक्ष होते हैं (देखिये पृष्ठ १० से १५ तक)।

(ख) वक्षकी गति

वक्षके आकारकी जानकारीके बाद वक्षकी गतिकी जानकारीकी आवश्यकता आ पड़ती है। वक्षकी गतिसे मतलब है, श्वास लेनेके समय उसका ऊपर चढ़ना और फिर श्वास छोड़नेके समय नीचे उतरना। इस बातकी जाँच करते समय यह गति कितनी तेजीसे होती है, इसका समयान्तर ठीक-ठीक है या नहीं, किस ढंगकी श्वास-क्रिया हो रही है, श्वासकी संख्या कितनी है प्रभृति बातोंपर ध्यान रखना भी जरूरी है।

अंगरेजीमें साँस लेना और छोड़ना—इन दोनों ही कार्योंको अर्थात् श्वास-प्रश्वासको **रेस्पिरेशन** (respiration) कहते हैं। इसमें श्वास ग्रहणकी क्रियाको **इन्सपिरेशन** (inspiration) और श्वास-त्यागको **एक्सपिरेशन** (expiration) कहते हैं।

श्वास-प्रश्वास

(Respiration)

स्वस्थ श्वास-प्रश्वास—स्वाभाविक स्वस्थावस्थामें श्वास-प्रश्वास धीर-भावसे होता है, उसमें किसी तरहकी जोरकी आवाज नहीं सुन पड़ती। किसी भी अवस्थामें या किसी भी करवट रहनेपर कोई तकलीफ

नहीं होती। श्वास खींचनेके समय पेट फूलता है और दोनों ही पजरे ठीक ठीक ऊपर उठते हैं और साँस छोड़नेके समय पेट पचकता है और दोनों पजरे सम-भावसे नीचे उतरते हैं।

श्वास-प्रश्वासकी संख्या—स्वस्थ जवान आदमियोंमें फी मिनट १८ से २० बारतक श्वास-प्रश्वासकी क्रिया होती है। तुरन्तके जनमे बच्चेकी श्वास प्रश्वासकी संख्या—फी मिनट ४० बार रहती है। इसके बाद ज्यों ज्यों अवस्था बढती जाती है, त्यों त्यों श्वास-प्रश्वासकी संख्या भी घटती जाती है। लड़कपनमें २६ बार, जवानीमें १८ से २० बार तथा वृद्धावस्थामें और भी कम हो जाती है।

यहाँ यह बात ख्याल रखनी चाहिये कि प्रति मिनट जब श्वास-प्रश्वासकी संख्याकी गणना की जाती है, तो साँस खींचना और छोड़ना अर्थात् श्वास-प्रश्वासकी एक संख्या मानी जाती है।

संख्या जाननेका तरीका है—वक्षके चढ़ाव-उतारको देखते रहना, घड़ीपर नजर डाल, वक्षके चढाव-उतारपर ध्यान देते हुए इसकी संख्याकी गणना की जाती है।

श्वास-प्रश्वासकी संख्याका बढ़ना—शारीरिक परिश्रम, स्नायविक उत्तेजना तथा ज्वर, रक्तका दोषावह सचालन अर्थात् खूनके दौरानमें गड़बड़ी, यह चाहे किसी भी कारणसे हो, हृदयकी बीमारी, फेफड़ेकी बीमारी, वायु-पथोंके रोग और स्वर-यन्त्र या गलकोषके रोगके कारण संख्या बढ सकती है। इस तरह हृद् रोग, कैशिका नलियोंका प्रदाह, न्युमोनिया, फुस्फुसावरण-प्रदाह (pleurisy), यक्ष्मा (phthisis), वायुस्फीति (emphysema), पार्श्व-शूल, अन्त्रावरण-प्रदाह, उदराध्मान, वक्षोदर-मध्यस्थ-पेशीके सचालनमें व्याघात प्रभृति कितने ही कारणोंसे श्वास प्रश्वासकी संख्या बढ जाया करता है। रक्तमें अम्लजानका अभाव, रक्तहीनता अथवा रक्तमें कार्बोलिक एसिड गैस मिल जानेपर भी श्वास-प्रश्वासकी संख्या बढ जाया करती है।

श्वास-प्रश्वासकी संख्याका घटना—कंठनली या वायुनलीमें बाहरी किसी चीजके चले जाने, कंठनलीका नया प्रदाह, कंठनलीका शोथ (edæmitus laryngitis), टेंटुआका अवरोध (obstruction of trachea), दमा प्रभृति बीमारियाँ, मस्तिष्कावरण-प्रदाह (meningitis), संन्यास (apoplexy), हृत्पिण्डकी मेद वृद्धि (fatty degeneration of the heart), मूत्र-विकार, बहुमूत्र तथा विष मात्रामें अफीम सेवन करनेपर श्वास-प्रश्वासकी संख्या घट जाया करती है।

श्वास-प्रश्वासके साथ नाड़ीका सम्बन्ध—एक बारके श्वास-प्रश्वासमें चार बार नाड़ीका स्पन्दन होता है। सिर्फ न्युमोनियामें कुल संख्या जितनी होती है, उसकी डेढ़ या दुगुनी अथवा कभी-कभी श्वासकी समतामें ही नाड़ीका स्पन्दन भी होता है। कितने ही विष प्रवेश कर जानेपर नाड़ीकी संख्या १ बारके श्वास-प्रश्वासमें ८ बार नाड़ी स्पन्दनके हिसाबसे भी रहती है।

श्वास-प्रश्वासके साथ तापका सम्बन्ध—अगर श्वास-प्रश्वासकी संख्या स्वाभाविककी अपेक्षा दो-तीन बार बढ़ जाये, तो थर्मामिटरमें ताप एक डिगरी ज्यादा हो जायगा।

श्वास-प्रश्वासके कारण वक्ष-संचालनका परिमाण—वक्षका संचालन देखनेके समय वक्षकी गति या संचालन कैसे होता है और वह दोनों बगलमें समान-भावसे ऊपर चढ़ता है या नहीं ; यह देखना चाहिये। यदि दोनों पार्श्व समान भावसे नहीं चढ़ते-उतरते, तो समझना होगा कि कोई रोग हुआ है।

श्वास-प्रश्वासके कारण ऊपरी अंशका संचालन—उदर-सम्बन्धी कोई बीमारी होनेपर वक्षका ऊपरी अंशका संचालन बढ़ जाया करता है। गर्भावस्थामें तलपेटका अर्बुद, जलोदर, अंत्रावरण-प्रदाह प्रभृतिमें भी ऐसा ही होता है।

श्वास-प्रश्वासमें तलपेटका संचालन—न्युमोनिया, फुस्फुसा-वरण प्रदाह, प्लुरिसी इत्यादि बीमारियोंकी वजहसे अगर वक्षमें दर्द होता है, तो पर्शुका-मध्यस्थ स्थानकी मांस-पेशियोंका पक्षाघात (palsy) या आक्षेप हो जाता है तथा यक्ष्मा वगैरह रोगोंमें जब वक्षका फैलना घट जाता है, तो पेटका सचालन विशेष होने लगता है। किसी-किसी स्नायविक रोगमें वक्षका सचालन हो एकदम ही रुककर केवल उदरसे ही श्वास क्रियाका सचालन हुआ करता है।

श्वास-प्रश्वासमें वक्ष-संचालनका घटना या लोप हो जाना—पार्श्व-शूल या फुस्फुसावरण प्रदाह (pleurisy) के कारण वक्षमें दर्द, फुस्फुसावरणमें जल सञ्चय (pleural effusion), वायु-वक्ष (pneumothorax), यकृतका बढना, धमनीका अर्बुद (aneurysm) प्रभृतिके दबावकी वजहसे किसी श्वास नलीका रुकना, यक्ष्मा, फुस्फुस प्रदाह (pneumonia), फेफड़ेका अर्बुद (pulmonary lumbar) आदि कारणोंसे श्वास प्रश्वासमें वक्ष-सचालन या तो घट जाता है अथवा लोप हो जाता है इत्यादि।

श्वास-प्रश्वासके कारण वक्षका प्रसारण—यहाँ यह ख्याल रखना चाहिये, कि सचालन और प्रसारणमें फर्क है। वक्षका प्रसारण होते रहनेपर सचालन अवश्य ही होगा, पर सचालनके समय प्रसारण हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। वायु-स्फीति रोगमें वक्षका सचालन भरपूर होता है, पर उसका प्रसारण नहीं होता या फेफड़े नहीं फैलते हैं।

श्वास-प्रश्वासके समय दोनों वक्ष सम-भावसे फैलते (expand) हैं या नहीं या किस जगह प्रसारण कम और किस जगह अधिक होता है, इसपर ख्याल रखना होगा।

कितने ही ऐसे रोग हैं, जिनमें वक्षका प्रसारण बढ़ जाया करता है। जैसे—वायुस्फीति (emphysema)। इसमें एक ओरका

फेफड़ा जब बेकार हो जाता है, तो दूसरी ओरके फेफड़ेको अधिक काम करना पड़ता है। इसीलिये, साँस लेते समय वक्षका वह अंश, जिसके नीचे निरोग फेफड़ा रहता है, ज्यादा फैलता है।

वायु-स्फीति, यक्ष्मा तथा लोबर न्युमोनिया प्रभृति रोगोंमें वक्षके एक स्थान या **एक पार्श्वका प्रसारण** हुआ करता है इत्यादि।

श्वास-प्रश्वासका ताल या समता—स्वस्थ अवस्थामें भिन्न-भिन्न मनुष्योंमें इसमें बहुत अन्तर दिखाई देता है। इसका पता ठीक-ठीक तब लगता है, जब रोगी अपने श्वास-प्रश्वासके प्रति सावधान नहीं रहता। इसका भी निर्णय श्वास-प्रश्वासके कारण जो वक्षका संचालन होता है, उसीपर ध्यान रखकर करना पड़ता है। इसमें या तो **श्वास-ग्रहणका समय या श्वास-त्यागका काल** अस्वाभाविक रूपसे बढ़ जा सकता है। श्वास-ग्रहण कालकी वृद्धि तो उस अवस्थामें होती है, जब **स्वरयंत्र या टेंटुआकी** कोई बीमारी रहती है और छोड़नेका काल तब बढ़ता है, जब **वायुनली या फेफड़ेका** कोई रोग होता है।

दीर्घ श्वास-प्रश्वास (Prolonged inspiration and expiration)—अगर स्वाभाविककी अपेक्षा ओरसे साँस चलती हो और साँस लेनेमें अधिक समय लगता हो, तो उसे दीर्घ निश्वास कहते हैं। **फेफड़ेके टियुबर्कलकी** पहली अवस्थामें या जब किसी कारणवश कंठनली, वायुनली और श्वासनली रुक जाती है, तो छोड़नेकी अपेक्षा साँस लेनेमें ज्यादा समय लगता है।

पर जब साँस खींचनेमें तो स्वाभाविक, पर छोड़नेमें अधिक समय लगता है, तो उसे दीर्घ प्रश्वास (prolonged inspiration) कहते हैं। **पुराना ब्रांकाइटिस** (श्वासनली-प्रदाह), **दमा, वायु-स्फीति** प्रभृति रोगोंमें ऐसा ही होता है।

चेनी-स्टोक्स श्वास-प्रश्वास—एक प्रकारकी विचित्र श्वास-प्रश्वासकी क्रिया होती है। इसमें श्वास-प्रश्वास पहले धीरे-धीरे चलता

है, इसके बाद क्रमश: तेज होता-होता तेजीकी सीमापर आ पहुँचता है। इसके बाद फिर धीमा होना आरम्भ होता है और इस तरह धीमा होते-होते एकदम क्षणभरके लिये बन्द हो जाता है; इसीको **चेनी-स्टोक्स** ब्रीदिंग कहते हैं। यद्यपि यह कम समयके लिये बन्द रहता है, पर आध मिनटतक बन्द रहता है और एक चेनी स्टोककी सम्पूर्ण क्रिया दो मिनटमें होता है। इस अवस्थाको देखनेसे ऐसा मालूम होता है, कि रोगी बेहोश हो गया या इसकी मृत्यु हो गयी; पर अगर रोगी जागता रहता है, तो इस अवस्थाका ठीक पता नहीं लगता।

एक दूसरी तरहका चेनी स्टोक्स भी होता है। यह चेनी स्टोक्स नहीं है, पर देखनेवालेको यही भ्रम हो जाता है। इसमें धीरे-धीरे श्वासकी तेजी होनेके बदले एकाएक गम्भीर श्वास आरम्भ हो जाता है और तबतक रहकर घटता है, जबतक एकदम साँस रुक नहीं जाती है। इसके बाद फिर पूरी तेजीसे आरम्भ होता है। मस्तिष्क-झिल्ली प्रदाहमें यह अक्सर दिखाई देता है।

इसके अलावा, हृत्पिंड तथा मूत्र-सम्बन्धी कितनी ही बीमारियोंमें इस तरहकी साँस कई महीनोंतक चला करती है, फेफड़ेकी बीमारीमें तथा सुषुम्ना नलीपर दबाव पड़नेपर भी ऐसा ही होता है।

श्वासका ढंग—श्वास प्रश्वासकी क्रिया वक्षके ऊपरी भागसे होती है। इसे वक्ष गह्वर-सम्बन्धी श्वास-प्रश्वास (thorasic type of respiration) कहते हैं। स्त्रियोंमें यह श्वास प्रश्वास बहुत कुछ दिखाई देता है; पर यह पूर्ण बढ़ा हुआ उस अवस्थामें मालूम होता है, जब वक्षोदर-मध्यस्थ पेशीका पक्षाघात हो जाता है अथवा प्रादाहिक रोगोंके कारण जब दबाव पड़ता है या औदरिक चापके कारण इस ढंगका श्वास होता है।

मनुष्य तथा छोटे बच्चोंमें वक्षोदर-मध्यस्थ-पेशी तथा औदरिक-पेशीकी ही क्रिया प्रधान होती है और उन रोगियोंमें, जिनकी वक्षोदर-

मध्यस्थ उपपशु‌र्काकी मांस-पेशियाँ पक्षाघातग्रस्त हो जाती है या जब दर्द अथवा प्रदाह, जैसे—पार्श्व-शूल और फुस्फुसावरणमें होता है, तो केवल औदरिक श्वास-प्रश्वासकी क्रिया ही होती है।

स्वाभाविक स्वस्थ अवस्थामें पुरुषोंके श्वास-प्रश्वासकी क्रिया **पेब्डोमिनो-थोरैसिक** और स्त्रियोंका **थोरैसिको पेब्डोमिनल** कहलाता है। इस समय यह भी पता लगा लेना चाहिये कि दर्द या श्वास-कष्ट तो नहीं है और है भी तो किस ढंगका।

श्वास-कष्ट (Dyspnœa)—यह भी कई तरहका होता है। जब स्वाभाविक श्वास-प्रश्वासकी संख्या बढ़ जाती है या श्वास लेने और छोड़नेमें तकलीफ होती है, तो उसे **श्वासकृच्छ्रता या श्वासकष्ट** (difficult or painfull breathing) कहते हैं। ऐसे रोगियोंकी पेशियोंको श्वास-क्रियामें बहुत जोर लगाना पड़ता है, बोलनेमें बहुत तकलीफ होती है और रोगीको ऐसा मालूम होता है, मानो उसके वक्षपर कुछ भार दबाया हुआ है। यही श्वासकृच्छ्रता जब बहुत बढ़ जाती है, तो श्वास-कष्टसे रोगीकी मृत्यु हो जाती है।

कण्ठनाली, वायुनली या श्वासनालीके रुकनेके कारण या किसी बीमारीकी वजहसे अगर फेफड़ेके वायुकोषोंमें रुकावट आ जाती है, तो उसे **निश्वास-कृच्छ्रता** (inspiratory dyspnœa) कहते हैं।

वायु-स्फीति, कण्ठ-नालीका अर्बुद (laryngeal tumour), दमा वगैरह बीमारियोंमें भी रोगीको श्वासकृच्छ्रता रहती है और रोगी बड़े कष्टसे जोर लगाकर साँस छोड़ता है, पर खींचता है सरलतापूर्वक ; **प्रश्वास-कृच्छ्रता** (expiratory dyspnœa) इसे ही कहते हैं।

श्वास-कृच्छ्रताका एक और भी भेद है। इसकी वजहसे रोगी ज्यादा देरतक लेटा नहीं रह सकता, उसे उठ बैठना पड़ता है। **दमा, पुराना ब्रांकाइटिस** और बहुत-सी हृत्पिण्डकी बीमारियोंमें ऐसा दिखाई देता है ; इसे **आर्थोपनिया** (orthopnœa) कहते हैं।

एक प्रकारकी श्वासकृच्छ्रता और भी होती है, जिसमें साँसके साथ फेफड़ेमें बहुत सा आक्सिजन चला जाता है और इसीलिये थोड़ी देरके लिये साँस रुक जाती है, इसे पेपनिया (apnœa) कहते हैं।

साँस रुक जाने या श्वास रोधको ऐसफिक्सिया (asphyxia) कहते हैं। इसमें रोगीका चेहरा काला या धुमैला पड़ जाता है, ओंठ नीले हो जाते हैं, कपाल और त्वचापर ठण्डा पसीना हुआ करता है तथा देखने, सुनने, चलने फिरनेकी शक्ति घट जाती है। बेहोशी, अकड़न, श्वास प्रश्वास धीमा, बीच बीचमें लम्बी साँस, नाड़ी तेज और क्षीण आदि लक्षण प्रकट होते हैं और अन्तमें हृत्पिण्डकी क्रिया बन्द होकर रोगी मर जाता है, इसे ऐसफिक्सिया कहते हैं।

स्पर्शन
(Palpation)

स्पर्शन द्वारा नीचे लिखे विषयोंको लक्ष्यम लाना चाहिये —

(क) वक्षका आकार (Form of the chest)।

(ख) वक्षकी गति (Movement of the chest), इसमें श्वास प्रश्वास तथा स्पन्दन भी आ जाते हैं।

(ग) कम्पन (Vibrations), इसमें फुस्फुसावरणका कम्पन तथा और भी कितने ही तरहके शब्द।

(घ) स्पर्श सहन न होना (Tenderness)।

(ङ) ह्रास वृद्धि।

(च) प्रतिघात शक्तिका अनुभव होना।

स्पर्शन द्वारा पहले तो वक्ष गह्वरका आकार, उसकी गतिपर ध्यान देना पड़ता है। दूसरी बात यह कि उसमें जो स्पन्दन या कम्पन हाथमें मालूम होता है, उसपर लक्ष्य रखना पड़ता है। तीसरी बात—किसी

दर्द आदिके सम्बन्धमें अगर रोगी शिकायत करता है, तो उसपर ख्याल रखना पड़ता है। इनसे पहले दर्शन अर्थात् देखकर जिन बातोंका पता लगाया गया था, उनका पता और भी अच्छी तरह लग जाता है। श्वास-प्रश्वासकी क्रिया सरलतापूर्वक होती है या नहीं तथा कुछ गड़बड़ी है, तो उसका कारण क्या है? यह सब मालूम हो जाता है।

गत प्रथम अध्यायमें यह बताया जा चुका है, कि स्पर्शन क्या है और उसकी परिभाषा तथा भेद बताये जा चुके हैं। (देखिये—पृष्ठ १६ से २०)।

परीक्षा

पूरी तरह क्रमबद्ध परीक्षा आरम्भ करनेके पहले, उस स्थानपर हाथ रखना चाहिये, जहाँ किसी तरहकी सूजन आदि मालूम हो या जहाँपर रोगी दर्द आदिकी शिकायत करता हो। इस समय रोगीका चेहरा भी देखते रहना चाहिये कि हाथ रखनेके कारण उसके भावोंमें क्या अन्तर पड़ता है, उसे कोई तकलीफ तो नहीं होती। वक्ष-प्राचीरमें प्रदाहके कारण दर्द भी हो सकता है, उपपर्शुकाके स्नायु-शूलके कारण भी कितनी ही जगह दर्द होता है। उस जगहका पता उन स्थानोंको छूकर लग सकता है, जहाँ रोगपूर्ण स्नायु पेशी-बन्धनीके पतले तन्तुसे बने आवरणके भीतर होकर गये हैं। **उपपर्शुकाके पेशी-शूलमें** रोगीके मांसपेशीके स्थानपर चिकोटी काटनेसे दर्द बढ़ जाया करता है। **फुस्फुसावरण-प्रदाहमें**—इस स्थानको दवानेपर दर्द बढ़ जाया करता है; क्योंकि उससे प्रदाहित फुस्फुसावरणपर दवाव पड़ता है।

इस समय किसी प्रकारकी सूजन यदि हो, तो उसका भी पता लगा लेना चाहिये। दर्शनके समय देखनेपर जो बातें मालूम हुई थीं, हाथ रखनेपर उनकी और भी ताईद हो जायगी अर्थात् उपपर्शुका-स्थान

अधिक उभरे हुए तो नहीं हैं। अगर **फुस्फुसावरणमें** रस सचय हुआ रहता है, तो एक प्रकारका स्पन्दन वहाँ मालुम हुआ करता है, मानो कोई चीज फड़क रही है। यदि **वक्ष-प्राचीरमें कोई फोड़ा** हुआ रहता है, तो यह फड़कन और भी स्पष्ट मालुम होती है। यह फोड़ा किसी हड्डीकी बीमारीके कारण भी हो सकता है या वक्ष-गह्वरके किसी कोमल अंशके अर्बुदके कारण हो सकता है अथवा **फुस्फुसावरण-गह्वर** (pleural cavity) **से पीवका स्राव** होनेके कारण भी यह फड़कन हो सकती है। अगर रोगी खाँस रहा हो, तो इस समय थोड़ा-सा दबाव देकर पीव बाहर निकाला जा सकता है।

इस तरहकी परीक्षा कर लेने बाद वक्ष गह्वरके आकारपर फिर ध्यान देना चाहिये। जरूरत मालुम होनेपर साँस लेने और छोड़नेके समयकी वक्षकी माप भी ले लेनी चाहिये; किसी जवान पुरुषको वक्षकी माप, स्तन-वृन्तके स्थानपर, साँस छोड़ देनेपर ३३ इञ्च होनी चाहिये तथा गहरी साँसमें २ इञ्च बढ़ जानी चाहिये (देखिये—पृष्ठ २७)।

इसके बाद **श्वास-प्रश्वासकी गतिकी परीक्षापर** आना चाहिये। इसमें सबसे जरूरी और ध्यान देनेकी बात यह है, कि दोनों ओरका वक्ष समान भावसे चढ़ता उतरता है या नहीं।

इसकी जाँचका तरीका यह है, कि रोगीके दोनों पार्श्वोंकी ओर, दोनों हाथकी अंगुलियोंके सिरे रखने चाहियें। यह इस तरह कि अंगूठेके बगलके किनारे वक्षकी मध्य रेखामें आकर मिलें। इस समय हाथ कड़े रखना चाहिये, रोगीको भरपूर साँस लेनेको कहना चाहिये। इस समय मध्य-रेखासे अंगूठा जितना ही हट जाये, उतना ही दोनों ओरके वक्षका फैलाव मालुम होगा।

हृत् शिखरकी स्थानकी गतिपर भी पूरा-पूरा ख्याल रखना चाहिये। इस तरहकी परीक्षाके समय चिकित्सकको रोगीके पीछेकी ओर खड़े रहना चाहिये और अपना अंगूठा कशेरुका (vertebra) के स्थानपर

रखकर अंगुलियाँ दाहिने तथा बायें फुस्फुस-शिखरकी ओर झुककर आ जाने देनी चाहिये। यह इस तरह कि ये अक्षकतक जा पहुँचे। इस समय रोगीको गहरी साँस लेनेको कहना चाहिये। स्वस्थावस्थामें ज्यों-ज्यों वक्ष फैलता है, तो कौड़ी (epigastrium) भी कुछ-न-कुछ ऊपर उठती है। यदि वक्षके प्रत्येक प्रसारणके साथ उदरोर्द्ध-प्रदेश भीतर धस जाये, तो समझना होगा कि या तो **वक्षोदर मध्यस्थ-पेशीका पक्षाघात** हो रहा है या उनमें **शिथिलता** आ रही है। यदि श्वास-त्यागके समय वक्षोदर मध्यस्थ-पेशी उदरोर्द्ध-प्रदेशसे छुड़ जाये, तो समझना चाहिये, कि कोई-न-कोई उदर-रोग अवश्य है।

स्पन्दन द्वारा **स्पन्दनोंका** भी पता चल जाता है। (देखिये—पृष्ठ १८)। इस कार्यके लिये हाथको चौड़ाकर वक्षपर रखना चाहिये। इसमें एक गड़बड़ी होती है अर्थात् दोनों तलहथियोंकी अनुभव शक्ति एक प्रकारकी नहीं होती। इसलिये **एक ही हाथको वक्षके दोनों भागोंमें रखकर स्पंदनोंकी तुलना करनी चाहिये।** स्पन्दनोंके अलावा फुस्फुसावरणका कम्पन, वायुनलीमें बलगम रहनेके कारण स्पन्दन अथवा **वायुनली या फेफड़ेके गह्वरोंमें रस-संचयके कारण** जो एक प्रकारका कम्पन होता है, उसका भी पता भरपूर लग जा सकता है, कि इस तरहका कोई कम्पन है या नहीं? इस बातकी जब जाँच हो जाय, तो परीक्षकको बातचीतके समय स्वरयंत्रमें जो कम्पन होता है, उसपर ध्यान देना चाहिये अथवा उस कम्पनकी ओर ध्यान देना चाहिये, जो बोलनेके कारण वक्ष-प्राचीरमें होता है। ये कम्पन टेंटुआकी राहसे स्वरयंत्रसे वायुनली तथा अन्य सूक्ष्म-नालियोंमें जाते हैं और वहाँसे फेफड़ोंके तन्तुओंमें होते हुए फुस्फुस-पटलपर जा पहुँचते हैं।

कोई भी ऐसा पदार्थ, जो वायु-पथ या फुस्फुस-तन्तुकी गतिशीलताकी शक्तिपर अपना प्रभाव पहुँचाता है अथवा परीक्षकके स्पर्शनमें बाधा पहुँचाता है अर्थात् उसके कम्पनको रोकनेवाला यदि कोई ऐसा

बाह्य-पदार्थ आ जाता है, तो यह उस कम्पनकी तेजीमें बाधा प्रदान करता है।

स्वर-यंत्रका कम्पन (Vocal fremitus) की जाँचके लिये रोगीको—"वन, वन, वन" या "नाइनटि नाइन" स्पष्ट आवाजमें बोलनेके लिये कहा जाता है। इस समय चिकित्सककी वक्षपर रखी हुई तलहत्थीमें कम्पनका पता स्पष्ट लग जाता है। इस समय यह भी जाँच कर लेना चाहिये, कि दोनों ओरके स्थानका यह कम्पन एक समान होता है या नहीं। यहाँ यह बात याद रखनी चाहिये, कि जहाँ हृदय बायें फेफड़ेको ढँके हुए हैं, वहाँ स्वाभाविक रूपसे यह कम्पन घटा हुआ होता है।

वोकल फ्रेमिटसका एक दूसरा नाम **टैक्टाइल फ्रेमिटस** (Tactile Fremitus) भी है। यह स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुषोंमें, बच्चोंकी अपेक्षा बूढ़ोंमें, मोटोंकी अपेक्षा दुबले-पतले मनुष्योंमें, पीठकी अपेक्षा वक्षमें और सँकरे वक्षवालेकी अपेक्षा चौड़े वक्षवाले मनुष्योंमें, बायीं ओरकी अपेक्षा दाहिनी ओर, बैठनेकी अपेक्षा लेटनेकी अवस्थामें और कण्ठास्थि तथा स्कन्धास्थिके निचले भागमें यह वोकल फ्रेमिटस अधिक अनुभवमें आता है।

बढ़ा हुआ वोकल फ्रेमिटस (Increased vocal fremitus)—जब आवाज धँसी रहती है, जब वक्ष-प्राचीर कड़ी रहती है या अक्सर जब यह पतली रहती है या जब फेफड़ा ठोस पड़ जाता है (consolidated lung), उसके पटलपर गह्वर बन जाता है, तब यह कम्पन बढ़ जाया करता है।

दाहिना वायु-पथ, बायेंसे चौड़ा और लम्बाईमें छोटा है तथा दो वायु-पथोंको अलग करनेवाली झिल्ली टेंटुआके बायें केन्द्रकी ओर रहती है। इसलिये स्वर-यन्त्रकी आवाज दाहिनी ओर सरलतापूर्वक जाती है और बायें वायु-पथसे नहीं जाती। इसीलिये यह वोकल फ्रेमिटस

स्वाभाविक रूपसे बायें फेफड़ेकी अपेक्षा दाहिने फेफड़ेके स्थानपर अधिक आता है।

वोकल फ्रेमिटसका घटना (Diminished vocal fremitus)—जब कम्पन ऊँचा होता है, जब वक्ष-प्राचीर मोटी पड़ती है और खासकर जब फुस्फुसावरण मोटा होता है, तब यह आवाज घट जाती है। जब फुस्फुसावरणमें रस-संचयके कारण वक्ष-प्राचीरसे फेफड़ा हट जाता है, उस समय या तो यह वोकल फ्रेमिटस बिलकुल ही घट जाता है या बिल्कुल ही नहीं आता। इसका कारण यह है, कि शिथिल फेफड़े वोकल फ्रेमिटसको ले नहीं जा सकते और इसीलिये कम्पन वक्षतक पहुँच ही नहीं पाता।

निम्नलिखित कारणोंसे भी वोकल फ्रेमिटस घट जाया करता है :—

किसी कारणसे अगर वायु-पथ रुद्ध हो जाये, वक्षमें अर्बुद हो जाये—फुस्फुसावरणका अर्बुद (pleural tumors), फुस्फुसारवण-प्रदाह (pleurisy), वायु-वक्ष (pneumothorax) के कारण फुस्फुसावरणमें वायु-संचय, वायु-स्फीति, फेफड़ेका शोथ (œdema of the lungs), फेफड़ेका प्रदाह (pneumonia) इत्यादि बीमारियोंके साथ श्वास-नली या श्वासोपनलियोंका रोध हो जाना, हृत्पिण्डका बढ़ना और इसी कारणसे फेफड़ेपर दबाव पड़ना।

यहाँ एक बात और भी ख्याल रखनी चाहिये; कि यक्ष्माकी बीमारीमें फुस्फुस-शिखर और न्युमोनियामें फेफड़ेके तलदेश (base) का वोकल फ्रेमिटस बढ़ जाया करता है इत्यादि।

फ्रेमिटस दो तरहके और भी होते हैं :—

(१) **रांकियल फ्रेमिटस** (Rhonchial Fremitus)—इसमें वक्षपर तलहत्थी रखकर परीक्षा करनेपर एक तरहका विशेष प्रकारका प्रबल कम्पन अनुभवमें आता है, इसी कम्पनको रांकियल फ्रेमिटस कहते हैं।

इसका कारण होता है—सर्दी लगने या किसी दूसरी वजहसे कंठ-नली, वायुनली, श्वासनली या छोटी श्वासोपनलियोंमें श्लेष्माका इकट्ठा हो जाना। यह फ्रे मिटस वक्षके प्रायः सभी स्थानोंमें पाया जाता है।

(२) फ्रिक्शन फ्रे मिटस (Friction Fremitus)—फुस्फुसावरण (pleura) में जब प्रदाह होकर उसका चिकनापन दूर हो जाता है, वह रूखड़ा हो जाता है, उस समय श्वास प्रश्वासके समय वह आपसमें रगड़ खाता है। इसी रगड़के कारण एक तरहका कम्पन होता है यह फ्रिक्शन फ्रेमिटस है। इसका अनुभव फुस्फुसावरण-प्रदाहकी उस अवस्थामें आता है, जबतक उसमें जल-संचय नहीं हुआ रहता, जल संचय हो जानेपर फिर वह अनुभवमें नहीं आता।

हृत्पिण्डका स्पर्शन—अध्यायमें हृदावरणके फ्रिक्शन फ्रेमिटसका लक्षण बताया जा चुका है।

फ्लक्चुएशन (फड़कन)—पीब हो जानेपर, दोनों हाथोंकी एक-एक अंगुली लम्बाईकी तरफ उस स्थानके दोनों ओर रखकर फड़कनकी जाँच की जाती है (देखिये—परिभाषा—पृष्ठ १६)।

जब वक्षमें पीब हो जाता है (Emphysema), उस समय फैफड़ेके आवरणके भीतरका रस पीबमें परिणत हो पड़ता है और फुस्फुसावरणको छेदकर वक्ष प्राचीरकी ओर बढ़ता है, उस समय यह फड़कन या फ्लक्चुएशन अनुभवमें आती है। इसके अलावा, जब वक्षमें फोड़ा हो जाता है, उस समय भी इसका अनुभव होता है।

स्पर्श-असहनीयता (Tenderness)—स्पर्शका सहन न होना अर्थात् दर्द आदि रहनेके कारण छूना बर्दाश्त न होना, यह स्पर्श-असहनीयता यक्ष्माके साथ फुस्फुसावरण-प्रदाह, फुस्फुस-प्रदाह (न्युमोनिया), पर्शुका मध्यस्थ स्थानका स्नायु-शूल (Inter-costal-neuralgia), पंजरास्थिका जख्म या किसी तरहकी चोट वगैरहके कारण यह स्पर्श असहनीयता पैदा हो जाती है।

प्रतिघात-शक्तिका अनुभव (Resistance to palpation)—इसके सम्बन्धमें पृष्ठ—२० में लिखा जा चुका है।

आघातन

(Percussion)

आघातन द्वारा निम्नलिखित बातोंकी परीक्षा श्वास-प्रश्वास संस्थानके सम्बन्धमें करनी चाहिये :—

(क) फेफड़ोंकी सीमा।

(ख) फेफड़ोंसे आयी हुई प्रतिध्वनि।

(ग) भिन्न-भिन्न प्रकारकी आवाजें (देखिये पृष्ठ २३—२६)।

सबसे पहले तो उस साधनपर ध्यान देनेकी जरूरत है, जिनसे आवाज उत्पन्न होती हैं, इसमें तीन चीजें आती हैं, एक तो प्लेक्सिमिटर—यह चाहे अंगुली ही हो या कोई यंत्र। दूसरा—उसके नीचेका वक्ष-प्राचीर और फिर वक्ष-प्राचीरके भीतर रहनेवाले यंत्र या स्थान। प्लेक्सिमिटरके स्थानपर अंगुलीका ही विशेष व्यवहार होता है। अब वक्ष-प्राचीरपर जब चोट दी जाती है, तो उसके स्थानोंके अनुसार अलग-अलग प्रकारकी आवाजें आती हैं। जैसे—वक्षोस्थि, अक्षकका स्थान—इन सबकी ही आवाजें अलग-अलग होती हैं। विद्यार्थियोंको इन स्थानोंपर आघातनकर बहुत ध्यानसे, इन भिन्न-भिन्न आवाजोंको हृदयंगम कर लेना चाहिये। इसके अलावा, वक्ष-प्राचीरके नीचे जिन स्थानोंमें वायु है, वहाँ ठीक-ठीक आघातन पड़नेसे कुछ दूसरे ही प्रकारकी आवाज आती है।

आवाजोंकी प्रकृति—आवाजोंकी प्रकृति, संख्या और किस्म सबमें ही विभिन्नता होती है। यह बहुत कुछ आघातकी शक्तिपर निर्भर करता है तथा उन स्थानोंकी समाईपर जो प्रतिध्वनि देते हैं।

संख्याका प्रकार—खास खास स्पन्दनोंके अनुसार यह प्रकार होता है, जो आघात कर देनेपर भीतरसे प्रतिध्वनि देते हैं।

जब किसी वृहत् गह्वरमें हवा भरी रहती है, तो आघात देनेपर उसमें स्पन्दन होता है। यदि उस स्थानकी दीवारोंमें बहुत खिंचावके कारण बाधा न पड़ी, तो यह **टिम्पेनिटिक** ढंगकी आवाज आती है (देखिये पृष्ठ २५), पर जब ये गह्वर कितने ही छोटे-छोटे गह्वरोंमें झिल्लियोंके कारण बँट जाते हैं, तब इनमें कुछ न-कुछ तनाव रहता है, इस अवस्थामें फिर टिम्पेनिटिक ढंगकी आवाज नहीं आती है। यह अवस्था उस समय दिखाई देती है, जब **फेफड़े स्वस्थ** रहते हैं। साराश यह कि फेफड़ोंकी यह आवाज तेजीमें—धीमी, परन्तु स्पष्ट कही जा सकती है।

फेफड़ेपर आघातन—फेफड़ोंपर आघातनकर हमलोग ३ बातोंको जाननेकी चेष्टा करते हैं। सबसे पहले फुस्फुस शिखर तथा फेफड़ेका तलदेश या नीचेवाला किनारा। इसके अलावा, बायें फेफड़ेके सामने वाली उस सीमाको जाननेकी चेष्टा करते हैं, जो हृत्पिण्डके ऊपर पड़ता है। दूसरे—फेफड़ोंके भिन्न भिन्न स्थानोंमें कितनी हवा भरी है और उनमें कितना तनाव है, इस बातको जाननेकी चेष्टा। तीसरी बात—यह कि व अस्वाभाविक-रूपसे अपने स्थानसे हट तो नहीं गये हैं अर्थात् वक्ष-पटलसे अलग तो नहीं हो रहे हैं। यह अलगाव किसी मोटी तहीके कारण ही गया है अथवा रस या गैस फुस्फुसावरण गह्वरमें पैदा होकर हो गया है।

फुस्फुस-शिखर और उनकी सीमाएँ—प्रतिघात शब्द अक्षक (clavicle) से १½ या २ इञ्च ऊपर स्वस्थ अवस्थामें सुना जाता है। ये हृत् शिखर अक्षकके ऊपर समान मावसे ऊँचे रहते हैं या दाहिना बायेंसे कुछ नीचा रहता या बायाँ दाहिनेकी अपेक्षा बहुत नीचा रहता हो, तो समझना चाहिये कि या तो **पहले फेफड़ोंकी कोई बीमारी**

हो चुकी है या असी वर्त्तमान है, जिसकी वजहसे फुस्फुस-शिखर स्वाभाविक उच्चता नहीं प्राप्त कर सका है। यदि दोनों ही शिखर निश्चित स्थानसे बहुत नीचे हों, तो दोनों ही फेफड़ोंकी बीमारी होना सम्भव है। **वायु-स्फीति** (emphysema) रोगमें दोनों ही शिखर स्वस्थ अवस्थाकी अपेक्षा बहुत ऊँचेपर रहते हैं।

जब इसकी परीक्षा होती रहे, तो चिकित्सकको ध्यानमें रखना चाहिये, कि रोगी सीधा सामनेकी ओर देखता रहे ; अगल-बगल माथा न घुमावे ; क्योंकि इससे फेफड़ोंकी पेशियोंके तनावमें फर्क पड़ जाता है। आघातनकी चोट जोरसे न देनी चाहिये और इस बातपर ध्यान रखना चाहिये, कि वक्ष-पटलपर यह चोट लम्बे-लम्बे सीधी पड़े। यदि जरा भी सन्देह हो जाये, कि फुस्फुस-शिखर स्वाभाविक-रूपसे नहीं है, तो उनकी ऊपरी समस्त सीमाओंकी जाँच करनी चाहिये। मेरुदण्डकी कशेरुकाके उठे हुए स्थानसे यह परीक्षा आरम्भ करनी चाहिये। स्वस्थावस्थामें फेफड़ेकी प्रतिध्वनि आनेका स्थान जरा टेढ़ा होता हुआ अक्षककी सीमाके १½ इञ्च ऊपरतक चला जाता है। वहाँसे यह नीचे और सामनेकी ओर उतरता हुआ आता है, यहाँतक कि यह स्टर्नो-मैस्टायडके स्थानकी बाहरी सीमातक जा पहुँचता है, जहाँ कि यह अक्षककी तरफ बहुत-कुछ नीचेकी ओर झुककर आ जाता है।

यदि यह सन्देह हो कि फेफड़ेके ऊपरी खंडमें रोग हो गया है, तो कन्धेके सिरेकी ओर आघातन करना चाहिये तथा उन स्थानोंपर ख्याल रखना चाहिये, जहाँ फेफड़ेकी प्रतिध्वनि आरम्भ और अन्त होती है। इन स्थानोंके अन्तरकी जानकारी रहनेसे बहुत फायदा होता है।

दाहिने फेफड़ेकी निचली सीमा—यकृतके ऊपर होती है, यह बहुत पतली रहती है। इसीलिये धीरे-धीरे आघात करनेपर इसका पता मजेमें लग जाता है ; परन्तु पीछेकी ओर कुछ जोरसे आघात देना पड़ता है ; क्योंकि उधरकी पेशियाँ कुछ मोटी होती हैं और पीठमें मांस

ज्यादा रहती है। जब रोगी बहुत स्थूल होता है, तो जोर-जोरसे आघात करना पड़ता है, जिसमें प्रतिध्वनि पायी जा सके। शान्त श्वास प्रश्वासके समय इसकी निचली सीमा स्तन रेखामें ६ठी पसलीके पास और मध्य काक्षिक रेखाके ८वीं पसलीपर और स्कन्धास्थि रेखामें १०वीं पसलीपर और कशेरुकातक १०वीं पर्शुका मध्यस्थ स्थानतक चली जाती है।

बायीं तरफ—निचली सीमा पेटके ऊपर रहती है। इसीलिये धीमी आवाज फेफड़ेके कारण नहीं, बल्कि पेटकी वजहसे टिम्पेनिटिक प्रतिध्वनि प्राप्त होती है। पीछेकी ओर एक तरहकी धीमी आवाज, जैसे ठोस चीजकी वजहसे धीमी आवाज आती है; क्योंकि मेरुदण्डके पास फेफड़ेके नीचे कड़ी बनावट है, इसीलिये इधरकी आवाज भी दाहिनी ओरकी भाँति ही प्राप्त होती है।

वृद्धावस्थामें दोनों ही फेफड़ोंकी नीचेवाली सीमा एक पसलीकी चौड़ाईकी भाँति अपने स्थानसे आगे बढ़ जाती है, बच्चोंमें ये उतनी ही बढ़ी नहीं होती।

बायें फेफड़ेका सम्मुख किनारा—वक्षोस्थिके पीछे ४र्थ उपपर्शुका स्थानमें निकलता है और इसी वजहसे हृत्पिण्ड प्रदेशमें धीमी आवाज यहाँपर मिलती है।

सीमाओंकी वृद्धि—ऊपर बतायी हुई सीमायें **गहरी साँस** लेने, वायु-स्फीति तथा उन रोगोंमें, जिनमें फेफड़ोंमें हवा बढ़ जाती है और वायुवक्ष या न्युमोथोरैक्स रोगमें आवाजकी निचली सीमा ऊपर बतायी सीमासे बहुत कुछ नीचे उतर जाती है और आवाजकी प्रकृति भी दूसरी ही होती है।

इन सीमाओंका ठीक ठीक पता उस अवस्थामें नहीं लगता, जब फेफड़े घसे या कड़े पड़ जाते हैं; उस अवस्थामें उदरका बढ़ा हुआ दबाव वक्षोदर-मध्य-पेशीके स्वाभाविक समतलपर दबाव डालता है या

जब फुस्फुसावरण-गह्वरमें रस संचय हो जाता है। ऐसी अवस्थामें यदि बायीं ओर रस-संचय हुआ हो, तो एक तरहकी धीमी आवाज दो प्रतिध्वनि देनेवाले स्थानोंके बीचके स्थानपर मिलेगी। यहाँ यह ख्याल रखिये, कि फुस्फुसावरण गह्वर इस स्थानसे लगभग ४ इञ्च नीचे फेफड़ेकी बनिस्वत निचली सीमाके पास रहता है। इसीलिये यह धीमी आवाज स्वाभाविक फेफड़ेकी आवाजकी अपेक्षा नीचेकी ओर ही मिलेगी।

एक बात और ख्याल रखनेकी है। गहरी साँस लेनेके समय स्वस्थावस्थामें फेफड़ेके किनारोंकी खासी गतिशीलता रहती है, पर रोग हो जानेपर यह गड़बड़ा जाती है। इसीलिये साँस लेने और छोड़ने, दोनों ही समय फुस्फुस-शिखरपर आघातनकर जाँच लेना चाहिये। फुस्फुस-शिखर या फुस्फुस-तलदेशमें यदि यह गति न अनुभवमें आये, तो तो समझना चाहिये कि **फेफड़ेमें बहुत जल्द छिद्र** होनेवाला है। यदि दोनों ही फुस्फुस-शिखरोंकी गतिमें कमजोरी हो तो समझना चाहिये कि यह या तो दोनों ओरके रोगोंके कारण हुआ है या **फेफड़ेकी ठीक-ठीक क्रिया न** होनेके कारण हुआ है, जैसा कि बैठे-बैठे काम करनेवालोंमें हुआ करता है।

विभिन्न स्थानोंपर आघातन शब्दकी प्रकृति—अक्षकके उठे हुए स्थानपर परीक्षकको धीमा आघात देना चाहिये। यह आघातन सामनेकी ओरसे आरम्भ करना चाहिये। इस समय इस बातपर भी ध्यान रखना चाहिये, कि जिन स्थानोंको उसने परीक्षा की, उसके शब्द दोनों ओरके मिलते हैं। इसके बाद दोनों ओरके अन्य स्थानोंकी तुलना करते हुए परीक्षा करनी चाहिये; खासकर अक्षकोर्ध्व-प्रदेशपर अधिक ध्यान रखना चाहिये, बायीं ओरके कितने ही स्थानोंमें आघातनके समय हृत्पिण्डसे कुछ बाधा, दूसरी ओरके शब्दोंसे तुलना करनेमें प्राप्त होगी।

सामनेके भागकी परीक्षा करनेके बाद बगलके भागमें आघातन देकर परीक्षा करनी चाहिये। इस समय रोगीको अपने दोनों हाथ ऊपर उठाये रखना चाहिये। इस परीक्षाके समय रोगीको आरामसे रखना बहुत आवश्यक है और उसके बाँह मुड़े रहें। माथा किसी ओर झुका न रहे।

यदि किसी स्थानमें अस्वाभाविक रूपसे ऐसा गड्ढा पड़ गया हो, कि उसपर अंगुली ठीक-ठीक न रखी जा सके, तो वहाँ एक छोटा-सा काग रख लेना चाहिये, इससे खासा प्लेक्सिमीटरका काम निकल जायगा।

यदि रोगीकी छाती सुडौल—सम परिमित न होगी, तो दोनों तरफकी आवाज समान न मिलेगी।

स्वस्थ मनुष्योंके निम्नलिखित स्थानोंकी आवाजें इस भाँति आती हैं :—

फुस्फुस-शिखर—आवाज साफ, पर बहुत तेज नहीं होती; क्योंकि कम्पनशील मांस थोड़े होते हैं, ज्यों-ज्यों टेंटुआ निकट आता-जाता है, त्यों-त्यों कुछ टिम्पेनिटिक ढंगोंकी आवाज आती है। दाहिने फुस्फुस-शिखरके स्थानपर बायेंकी अपेक्षा कम प्रतिध्वनि प्राप्त होती है।

अक्षक-प्रदेशमें—वक्षोस्थिके अन्तके स्थानपर स्पष्ट, कुछ तीव्र तथा टेंटुआके कारण कुछ ढोलकी-सी टिम्पेनिटिक आवाज आती है। वक्षोस्थिके पास मध्य भागमें साफ, अक्षकोर्ध्व-प्रदेश (supraclavicular) या बाह्य अक्षक-प्रदेशसे तीव्र आवाज आती है, इसमें टपटपाहट नहीं होती। बाह्य सीमाके अन्तमें मध्यकी तरह ही आवाज आती है, पर उतनी तीव्र नहीं रहती।

कंठास्थिके निचले प्रदेशमें—आवाज स्पष्ट और तीव्र रहती है, वक्षोस्थिके पास कुछ टपटपाहट-सी आवाज आती है।

स्तन-प्रदेश—यहाँ दोनों ओरकी आवाजोंमें कुछ अन्तर रहता है। दाहिनी ओर फेफड़ेके नीचेवाले भागके पीछे यकृत रहता है। बायीं ओर बहुत-सा स्थान हृत्पिण्ड घेरे रहता है; साधारणतः फेफड़ेकी आवाज स्पष्ट और खासी तीव्र रहती है, सिर्फ उन स्थानोंपर ही कुछ धीमी रहती है, जहाँ अगल-बगल यंत्रोंके कारण स्पन्दनमें बाधा पड़ती है। यहाँ वक्षकी प्राचीर कुछ मोटी रहती है; क्योंकि यहाँ एक तो पैक्टोरल पेशी है, दूसरे स्तन-ग्रन्थि हैं, इसीलिये जो आवाजें आती हैं, वे कुछ-न-कुछ अस्पष्ट-सी ही रहती हैं।

स्तन निम्न-प्रदेशमें—एक ओर यकृत और बृहदन्त्र और पेटके कारण शब्दोंपर बहुत प्रभाव पड़ जाता है; इतनेपर भी फेफड़ेकी आवाज स्पष्ट आती है; परन्तु तेज नहीं होती है।

कक्ष-प्रदेश अर्थात् बगलकी जगहमें—आवाज ज्यादा तेज होती है तथा अन्य स्थानोंकी अपेक्षा स्पष्ट होती है। पिछले भागमें इसकी तेजी कुछ घटी हुई मिलती है।

पीछेकी ओर—पीठमें मांसके बड़े-बड़े थक्के रहते हैं, इससे आवाजें कमजोर आती हैं; इसीलिये यहाँ जरा जोरसे और अक्सर कई अंगुलियोंसे आघातन करना पड़ता है। हँसलीके स्थानपर बहुत धीमी आवाज आती है और हँसलीके नीचे इससे कम।

बढ़ी हुई आवाज (Increased resonance)—वायु-स्फीति रोगमें आवाज कुछ बढ़ जाती है, पर वक्ष-प्राचीरमें तनाव रहनेके कारण तेजी अधिक रहती है, इससे केवल बढ़ी हुई प्रतिध्वनिके आनेमें रुकावट ही नहीं मिलती; बल्कि धीमी आवाजकी तरह मालूम होता है।

जब फेफड़ेके तन्तु शिथिल पड़ जाते हैं; पर अब भी उनमें हवा भरी रहती है, तो वायु-कोषोंको अलग करनेवाली झिल्लीका प्रभाव छूट जाता है और आवाज एकदम टिम्पैनिटिक आने लगती है, इसके अलावा आवाजकी तेजी भी बढ़ जाती है। इसीको **स्कोडेइक रेजोनेन्स**

(skodaic resonance) भी कभी कभी कहते हैं। साधारणत फेफड़ेका प्रदाह (न्युमोनिया) की वजहसे जब फेफड़ेका निचला खंड कड़ा पड़ जाता है अथवा जब फुस्फुसावरणमें बहुत रस संचय हो जाता है (pleural effusion), तब फेफड़ेके निचले अंशमें दबाव पड़ता है। इस समय आघातन करनेपर एक प्रकारकी ढपढप खोखली आवाज आती है।

जब हवा फुस्फुसावरण गह्वरमें प्रवेश करती है, तो आवाज स्वभावत तेज टिम्पैनिटिक (*tympanitic resonance*) हो जाती है, यह ढपढपकी तरह आवाज है। **वायु-वक्ष रोग** (pneumo thorax) में एक तरहकी ऊँची ढपढप आवाज आघातनके समय वक्षम दो रुपयोंसे ठोंकनेपर आया करती है। इसमें एक तो प्लेक्सिमीटरकी जगह रखा जाता है और दूसरेसे ठोका जाता है। इस समय परीक्षक रोगीकी पीठकी ओर सुनता है। बढे हुए रोगमें यह आवाज कोमल और बाजेकी तरह होती है। फेफड़ोंमें गह्वर बन जाना (cavity), फुस्फुसावरणमें बहुत वायु होकर फूल उठना, फुस्फुस वायु कोषोंमें ज्यादा वायु हो जानेपर वक्षके ऊपर आघातन करनेसे यह टिम्पैनिटिक आवाज आती है।

टिम्पैनिटिक शब्दका घटना (Tympanitic resonance diminished)—जब फुस्फुसावरण मोटा पड जाता है या जब फेफड़ा ठोस पड जाता है, समूचा या अपूर्ण खंड—जैसा कि निमोनियामें होता है या यक्ष्माकी तरह जब छोटे छोटे गड्ढे पड़ जाते हैं, तब आवाज घट जाती है। यक्ष्मा, जोरका आघातन करने, पेंचके कारण कड़ापन तथा वक्ष पटलसे उसकी दूरीके अनुसार धीमी (dull) आवाज आती है। जब वक्षमें **जल-संचय** (hydrothorax) हो जाता है या फुस्फुसा वरणमें रस-संचय हो जाता है, तो धीमी (dullness) आवाज आती है और प्लेक्सिमीटरकी अंगुलीमें एक स्वाभाविक झटका मालुम होता

है। रस-स्रावके साथ प्लुरिसीमें रस-स्राव ऊपरी सीमामें जरा टेढ़ी लकीरकी भाँति रहता है।

धीमी आवाज (Dull sound)—किसी ठोस चीजपर आघात करनेसे जैसी आवाज आती है, उसी ढंगकी आवाज डल साउण्ड या धीमी आवाज है। फेफड़ेके विधानोंका संकोचन (pulmonary collapse) की वजहसे फेफड़ेके किसी-किसी वायु-कोषसे हवा निकल जाती है, तो उस स्थानपर आघातन करनेसे धीमी ठोस आवाज (dull sound) आती है। यक्ष्माकी बीमारीमें फेफड़ेमें टियुबर्कल पैदा हो जाना या फेफड़ेका प्रदाह (न्युमोनियामें) फेफड़ेके वायु-कोषोंमें लसदार श्लेष्मा जमकर उसका कड़ा पड़ जाना, फेफड़ेका शोथ (œdema of lungs) के कारण फेफड़ेमें रक्तकी अधिकता, पुरानी निमोनियाकी बीमारीमें फेफड़ेका सिकुड़ना (scirrhosis of lungs) या फेफड़ेका कोई उपादान ध्वंस हो जाना, फेफड़ेका अर्बुद, फेफड़ेमें फोड़ा, फेफड़ेका रुकना (pulmonary obstruction), फुस्फुसवेस्ट-प्रदाहमें जल-संचय, वक्षमें पीव होना (empyema) बीमारी—इन सब रोगोंमें वक्षपर आघातन करनेसे डल-साउण्ड (धीमी ठोस आवाज) प्राप्त होती है।

क्रैकड-पाट साउण्ड (Cracked-pot sound)—फटी हाँड़ीकी तरह आवाज। यह संकुचित द्वारसे एकाएक हवा निकल जानेके कारण आती है। जिस समय किसी ऐसे गह्वरके ऊपर आघातन दिया जाता है, जो किसी छोटी श्वासनलीसे संयुक्त रहता है, उस समय और खासकर जब मुँह खुला रहता है, तब यह आवाज आती है। यह आवाज हिस-हिसकी तरह रहती है, जिसमें सिक्केकी झनझनाहटकी तरहकी आवाज मिली रहती है। इस आवाजको सुननेके लिये बहुत सावधानतासे आघातन करना चाहिये ; क्योंकि जोरसे आघातन करनेपर यक्ष्माके रोगीके मुँहसे बहुत-सा रक्त निकल सकता है और इस तरह चिकित्सकको अपयश प्राप्त हो सकता है।

यह आवाज अक्सर न्युमोथोरैक्स तथा थोरैसिक फिस्चुला रोगमें सुन पड़ती है। इसके अलावा, जब फेफड़े शिथिल पड़ जाते हैं, तो फुस्फुसवेस्ट प्रदाहमें जिस जगह तरल रहता है, उस स्थानपर तथा फेफड़ेके प्रदाहमें जहाँ फेफड़ा ठोस पड़ जाता है, उस स्थानपर सुन पड़ती है।

ऐम्फोरिक रेजोनैन्स (Amphoric resonance)—यह घड़ाके खाली बर्तनपर दी हुई आवाजकी तरह आवाज होती है और फेफड़ेके ऊपरी अंशमें जब कोई बड़ा गह्वर हो जाता है तथा उस गह्वरमें सिर्फ हवा रहती है, तो उस गह्वरके ऊपर वक्षपर आघातन करनेसे ऐसी ही आवाज आती है।

ठीक-ठीक परिपोषण न होनेकी कितनी ही अवस्थाओंमें वक्षके सम्मुख भागके स्नायु अस्वाभाविक रूपसे उत्तेजित हो पड़ते हैं। ऐसी अवस्थामें वक्षोस्थिपर हल्की चोट देनेसे तन्तुओंका संकोचन होता है ; यह यक्ष्मामें अनुभवमें आता है।

यक्ष्मा तथा वायुवक्ष (pneumothorax) इत्यादि बीमारियोंमें रोगवाली जगहके ऊपर वक्षपर आघातन करनेसे ऐम्फोरिक रेजोनेन्स सुन पड़ता है।

४। आकर्णन
(Auscultation)

आकर्णन द्वारा—

(क) श्वास-प्रश्वासकी आवाजोंकी प्रकृति।

(ख) स्वर-यन्त्रकी आवाज (vocal resonance)।

(ग) भिन्न-भिन्न प्रकारके श्वास-यंत्रके शब्दोंपर विचारकर रोगका निदान किया जाता है।

इस परीक्षाके समय तीन बातोंपर हर जगह ध्यान रखना चाहिये। एक तो यह कि—श्वास-शब्दकी प्रकृति। दूसरे—बोलनेकी आवाजकी प्रकृति और तीसरे—अन्य शब्दोंकी उपस्थिति या अनुपस्थिति।

(क) श्वास-प्रश्वासकी आवाजोंकी प्रकृति

इसमें दो प्रधान हैं—(१) वेसिक्युलर ब्रीदिंग (Vesicular breathing) और (२) ब्रांकियल ब्रीदिंग (Bronchial breathing)।

वेसिक्युलर ब्रीदिंग—यह आवाज स्वाभाविक वक्षकी आवाज है। यह आवाज वक्ष तथा पीठकी सभी स्थानोंमें सुननेमें आती है, पर साँस लेनेके समय बगलके पास और स्कन्धास्थिके नीचे अधिक स्पष्ट सुनी जाती है; यही वेसिक्युलर मरमर या वेसिक्युलर ब्रीदिंग है।

साँस लेनेकी आवाज खासी स्पष्ट रहती है, कोमल और मृदु रहती है और जोरसे साँस छोड़नेकी तरह आवाज आती है।

साँस लेनेके बाद ही साँस छोड़नेका शब्द आता है। यह श्वास शब्दकी अपेक्षा कम तीव्र होता है, धीमा रहता है और साधारण हवा बहनेकी आवाजकी तरह होता है।

श्वास छोड़नेके समय वेसिक्युलर मरमरकी आवाज प्रायः नहीं सुन पड़ती या बहुत कम सुन पड़ती है। सच तो यह है, कि श्वासके साथ खींची हुई हवा फेफड़ेके वायु-कोषोंमें जानेके समय एक तरहका कम्पन पैदा कर देती है। इसीसे यह आवाज आती है।

वेसिक्युलर ब्रीदिंगके प्रभेद

(Variation of vesicular breathing)

१। प्युराइल ब्रीदिंग (Puerile breathing)—जन्मसे बारह वर्षकी उमरतककी फेफड़ेकी आवाजको प्युराइल ब्रीदिंग कहते हैं। यह वेसिक्युलर ब्रीदिंग जैसी ही आवाज है, पर उससे कुछ तेज होती है। साँस लेने और छोड़ने—दोनों समय ही यह आवाज आती है। बच्चोंकी वक्षोस्थिके ऊपरी अंश और स्कन्धास्थिके बीचके स्थानके सिवा सभी जगह यह आवाज सुन पड़ती है।

२। हार्श ब्रीदिंग (Harsh breathing)—अगर किसी कारणवश फेफड़ेकी स्थिति स्थापकता गुण नष्ट हो जाता है (elasticity), तो साँस छोड़नेके समय वेसिक्युलर ब्रीदिंगकी आवाज कुछ कड़ी या कर्कश सुन पड़ती है। यही हार्श ब्रीदिंग है। यक्ष्माकी प्रारम्भिक अवस्था तथा ब्राङ्काइटिसमें यह आवाज सुन पड़ती है।

३। जर्की या काग्ह्वील ब्रीदिंग (Jerky or Cogwheel breathing)—इसमें लगातार शब्द नहीं आता, पर तरंग या तेज कम्पनकी तरह आवाज आती है या रुक रुककर श्वास-क्रिया होती है। इसका मतलब यह है, कि श्वासनलियाँ अच्छी तरह फैलती नहीं हैं। इसीलिये अगर फुस्फुसके अग्रभागमें यह आवाज आवे, तो यक्ष्माकी पहली अवस्था समझना चाहिये। केवल स्नायविकताके कारण भी ऐसी श्वास-क्रिया हो सकती है, गुल्म-वायु, पार्श्व-शूल, श्वासनली-प्रदाहकी बीमारीमें यह आवाज आती है।

वेसिक्युलर मरमरकी वृद्धि (Increased vesicular murmur)—इसीको प्युराइल ब्रीदिंग भी कहते हैं, जिसका वर्णन ऊपर दिया जा चुका है। यह वेसिक्युलर मरमरकी भाँति ही होता है ; पर आवाज उससे कुछ तेज होती है। बच्चोंके वक्षमें सभी जगह

यह आवाज सुन पड़ती है, सिर्फ वक्षोस्थिके ऊपरी अंशमें और स्कंधास्थिके बीचके स्थानमें यह आवाज नहीं आती है। अवस्था-प्राप्त मनुष्योंमें फेफड़ेकी किसी बीमारीकी वजहसे अगर किसी तरफ भी एक ओरका फेफड़ा बेकार हो जाता है और दूसरी ओरके फेफड़ेको ज्यादा काम करना पड़ता है, उस समय जिस फेफड़ेको ज्यादा काम करना पड़ता है, उसके ऊपर यह आवाज सुननेमें आती है। जवानोंका फुस्फुसावरण-प्रदाह (प्लुरिसी), वायु-स्फीति (emphysema), निमोनिया, धमनीका अर्बुद, यक्ष्मा प्रभृतिमें जब श्वासनलीपर दबाव पड़ता है, तो रोगवाले अंशके पासके स्थानमें यह आवाज आती है। कभी-कभी दमा रोगीके वक्षके सभी स्थानोंमें यह आवाज आती है।

वेसिक्युलर मरमरका घटना—कितने ही कारणोंसे यह आवाज घट भी जाती है और बहुत क्षीण आवाज सुन पड़ती है। खूब शान्तिसे साँस लेने और छोड़नेपर छोड़नेकी आवाज अक्सर नहीं आती। इसीलिये रोगीको गहरी साँस लेनेके लिये कहना पड़ता है, तब यह आवाज मिलती है। अगर यह आवाज मिले तो समझना चाहिये, कि फेफड़ोंके फैलनेमें दोष है।

श्वास शब्दका बिलकुल ही न मिलना (Total disappearance of the breath sound)—फुस्फुसावरण-प्रदाहमें जब फेफड़ेमें रस-संचय हो जाता है, तो रस-संचयके स्थानके नीचे यह आवाज आती है ; क्योंकि शिथिल फेफड़े आवाजको पूरी तरह नहीं आने देते। यदि तरल बहुत थोड़ा होता है, तो बहुत क्षीण आवाज सुन पड़ सकती है। साधारणतः ऐसा होता है, कि जब भरपूर पानी इकट्ठा हो जाता है, तो श्वास-शब्द लोप होनेके बदले, जोरका हो जाता है और ब्रांकियल श्वासके ढंगकी आवाज आने लगती है। इस अवस्थामें **वोकैल रेजोनेन्स** (vocal resonance) भी जोरकी आवाजका ही होता है।

साँस छोड़नेकी आवाजके समयकी वृद्धिके सम्बन्धमें यह ख्याल रखना चाहिये, कि वायुस्फीति तथा दमा प्रभृति कितनी ही बीमारियोंमें स्वाभाविक अवस्थाकी अपेक्षा बहुत धीरे-धीरे साँस छोड़नेमें आती है। इसलिये इन बीमारियोंमें श्वासका धीरे-धीरे निकलना रोगकी सूचना ही देता है।

निम्नलिखित रोगोंमें वेसिक्युलर मरमरकी आवाज घट जाती है :—

फुस्फुसावरण-प्रदाह (pleurisy), फुस्फुसावरणमें जल-संचय, फुस्फुसावरणके साथ फेफड़ेका जुड़ जाना (pleural adhesion), फुस्फुसावरणका मोटा पड़ जाना, फुस्फुसावरणमें अर्बुद (tumor of the pleura)। इन रोगोंके कारण फेफड़ोंमें हवा जाकर वायु कोष अच्छी तरह नहीं फैलती, इसलिये ऐसी कमजोर आवाज आती है। इसके अलावा, यदि शरीर बहुत कमजोर हो पड़ता है, तो कलेजेमें दर्द, श्वासनलीके भीतरी स्थानकी मोटाई बढ़ जाना, श्वासनलीमें रस-संचय होना, शरीरका बहुत स्थूल हो जाना।

ब्रांकियल्स ब्रीदिंग (Bronchial breathing)—इस आवाजको समझनेके लिये विद्यार्थियोंको टेंटुआ (trachea) की आवाजपर ध्यान देना चाहिये। कठनली, वायुनली और श्वासनलीसे जो आवाज आती है, उसे ब्रांकियल ब्रीदिंग कहते हैं। यह फुफकार और कुछ कर्कश आवाजकी तरह रहता है। स्वस्थ अवस्थामें कठनली, वायुनली और श्वासनलीके भीतरसे वायु आने-जानेकी आवाजके कारण ही यह आवाज उत्पन्न हुआ करती है। इसमें श्वास लेनेकी आवाज साधारणतः तेज होती है, श्वास लेना जिस समय खतम होनेपर आता है, उस समय यह आवाज नहीं सुन पड़ती।

श्वास-ग्रहणकी अपेक्षा श्वास-त्यागकी आवाज कुछ ज्यादा तेज होती है। श्वास-त्यागके प्रायः सम्पूर्ण कालमें यह तेजी वर्त्तमान रहती है।

यह तीन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है ; क्योंकि स्वरयंत्रके श्वासका वृहद्, मध्यम और सूक्ष्म। इन तीन प्रकारके वायु-पथोंसे जाता है, इसीलिये सबकी अलग-अलग आवाज आती है।

(१) **धीमा श्वास-शब्द या कैवर्नस ब्रीदिंग** (Cavernous breathing)—यह एक धीमी ब्रांकियल ब्रीदिंगका शब्द है। धीमे गहरे फुफकार शब्दको कैवर्नस ब्रीदिंग कहते हैं। यह उस स्थानपर आता है, जहाँ फेफड़ोंमें बड़े-बड़े गह्वर पड़ जाते हैं। साधारणतः यक्ष्मा रोगमें फेफड़ोंमें बड़े-बड़े गह्वर पड़ जानेके कारण यह आवाज सुननेमें आती है अथवा श्वासनलीका फैलना, फेफड़ोंमें फोड़ा, फेफड़ेका सड़ना आरम्भ होना (gangrene of the lungs) या फेफड़ेमें पीब होना (empyema) रोगमें जब रोग-पीड़ित स्थानसे किसी श्वासनलीका संयोग हो जाता है, तब यह आवाज आती है।

दूसरी मध्यम तेजीकी आवाज अर्थात् **एम्फोरिक ब्रीदिंग** (Amphoric breathing)—यह आवाज उसी अवस्थामें होती है, जब फेफड़ेमें कोई बीमारी रहती है। यह आवाज शीशीके मुँहपर फूँक मारनेकी तरह होती है, इस आवाजकी प्रखरतापर विचार करनेसे मालूम होता है, कि इसमें एक तो धीमे ढङ्गकी आवाज और बीच-बीचमें कुछ जोरकी कितनी ही आवाजें मिली हैं। जब श्वासनलीका किसी **कोमल प्राचीरवाले गह्वरसे सम्बन्ध** हो जाता है या **वायु-वक्ष** (pneumothorax) रोगमें जब फेफड़ेमें छेद हो जाता है, उस समय यह आवाज आती है।

ब्रांको वेसिक्युलर या इण्टरमीडियेट ब्रीदिंग (Broncho-vesicular or intermediate breathing)—रोगियोंके श्वास-नलीका शब्द तो परीक्षकके कानमें आता है ; पर जहाँ फेफड़ेमें हवा-भरी श्वासनली तथा वक्ष-प्राचीर बाधा पहुँचाती है, उस समय वेसिक्युलर और ब्रांकियल दोनोंकी ही निश्चित आवाजें आती हैं। यह एक

प्रकारका कर्कश शब्द है। साँस लेनेके समय तो यह आवाज बहुत थोड़ी आती है, पर श्वास छोड़नेके समय यह आवाज देरतक ठहरती है। फफड़ोंक मूलमें (root of the lungs) अर्थात् श्वासनलीके साथ फेफड़ेका जहाँ सयोग होता है, उस स्थानपर यह सुन पडता है। अतएव, स्वस्थ व्यक्तिमें यह आवाज जब सुननी हो, तो वक्षास्थिके ऊपरी अंशमें (superior sternal) या स्कन्धास्थिके बीचके स्थानमें (inter-scapular) स्टेथास्कोप रखकर यह आवाज सुननी पड़ती है। श्वासनली वक्षमें बहुत गहराईपर रहती है, फफडोंकी मोटी तही उसकी आवाजको पहुँचनेमें बाधा पहुँचाती है, पर यक्ष्मा रोगके आरम्भमें जब फफड़ेका कुछ कड़ा पड जाता है तथा निमोनिया और फेफड़ेके तन्तुओंके सकोचन (pulmonary collapse) में यह आवाज सुन पड़ती है। यहाँ एक बात और भी ख्याल रखनेकी है अर्थात् यदि कड़ापन फेफड़ेके पटलतक आ पहुँचता है, तो श्वास क्रिया ब्राकियल होती है, पर यदि यह इतनी दूरतक नहीं फैलता, तो ब्राकियल ब्रीदिंग वेसिक्युलर ब्रीदिङ्गके भीतरसे सुन पड़ता है।

कितने ही स्थानोंपर जहाँ स्पर्शन द्वारा जाँच हो चुकी है, वहाँ आकर्णन द्वारा श्वास प्रश्वासकी आवाजें सुननी चाहियें, उनकी प्रकृति लिख लेनी चाहिये तथा वक्षके दोनों ही पार्श्वमें इस तरह आकर्णन द्वारा शब्द सुनते हुए दोनों ओरकी आवाजोंकी तुलना करनी चाहिये।

स्वर-यंत्रसे उत्पन्न शब्द
(Vocal resonance)

स्वर-यंत्रसे उत्पन्न शब्द या वोकैल रैजोनेन्स (Vocal resonance)—यह बोलनेकी आवाज है। स्वस्थ मनुष्य जब बोलते हैं, उस समय कण्ठनलीके ऊपर सुननेसे एक तरहकी ऊँची आवाज आती

है, इसे लैरिंगोफोनी (Laryngophony) कहते हैं। फुसफुसाकर बोलनेके समय यह आवाज कुछ जोरकी आती है।

आकर्णन परीक्षामें स्वर-यंत्रके इन शब्दोंको सुनना, आकर्णनकी दूसरी परीक्षा है। इस समय **वोकैल रेजोनेन्सकी तेजी और उसकी प्रकृतिकी परीक्षा की जाती है।** स्वस्थावस्थामें भी दोनों ओरके—फेफड़ेके ऊपरकी आवाजमें फर्क रहता है। दाहिनी ओरकी आवाज बायेंकी अपेक्षा कुछ ज्यादा तीव्र रहती है और यदि स्टेथास्कोप बड़ी श्वासनलीके पास रहता है, तो और भी जोरकी आवाज आती है। जब रोगी "वन, वन, वन" या "नाइनटी-नाइन" कहता है, तो कानोंमें बोलनेकी स्पष्ट आवाज नहीं, बल्कि एक भर्रायी-सी आवाज आती है। *इसकी तेजी रोगीकी आवाजकी तेजी तथा फेफड़ोंकी आवाज पहुँचानेकी शक्तिपर निर्भर करती है।*

इसकी तेजी मालूम करनेका एक सरल तरीका यह है, कि परीक्षा करते समय—कानसे कितनी-कितनी दूरीपर आवाज मिलती है, इसको समझना। कितनी ही बार तो आवाज बहुत दूरकी आती मालूम होती है। कभी-कभी चेस्ट-पीससे थोड़ी दूरीसे आती हुई आवाज मालूम होती है। इस अवस्थामें प्रतिध्वनि कुछ घट जाती है, इसीको निश्चय करनेके लिये भिन्न-भिन्न स्थानोंपर आकर्णन करना चाहिये।

वास्तवमें आघातन या स्पर्शनकी भाँति ही वक्षके दोनों ओर आकर्णन द्वारा भी परीक्षा करते रहना चाहिये। साधारण तेजीकी वोकैल रेजोनैन्सकी आवाज एकहरा स्टेथास्कोपके चेस्ट-पीसके पास ही आता है, यदि यह कानके पास आये, तो समझना चाहिये कि आवाज बढ़ी हुई हैं; जब यह कानके पास आती है, तो उसे ब्रांकोफोनी कहते हैं।

ब्रांकोफोनी (Bronchophony)—स्वस्थ व्यक्तिके बोलनेके समय वक्षोस्थिके ऊपरी अंशमें और स्कन्धास्थिके बीचमें स्टेथास्कोप

रखकर जो आवाज सुनी जाती है, वही ब्राकोफोनी है। यह आवाज लैरिंगोफोनीसे कुछ साफ, बहुत तेज नहीं और दूरसे आयी हुई आवाजकी तरह मालूम होती है। इसके अलावा, फेफड़ेका प्रदाह (न्युमोनिया) अथवा यक्ष्माके कारण जब फेफड़ा ठोस और कड़ा पड़ जाता है या जब फेफड़ेमें गह्वर बन जाते हैं या फुस्फुसावरणमें जल-संचय हो जाता है, उस समय इन रोगी स्थानोंमें वक्षके ऊपर कभी-कभी यह आवाज सुन पड़ती है।

पेक्टोरिलोकी (Pectoriloquy)—रोगीसे जो शब्द बोलवाया जाये, वह साफ साफ कानमें सुन पड़े, तो फुस्फुसाहटकी आवाज भी स्पष्ट सुन पड़ेगी। यही पेक्टोरिलोकी कहलाता है। यदि किसी बृहत् आकारके गह्वरसे श्वासनली मिल जाती है, तो यह आवाज आती है। जब फुस्फुस निम्न-खंड (lower lobe) में या फुस्फुसावरणमें जल-सचय प्रभृतिके कारण दबाव पड़ता है, तो ऊर्द्ध-खंड (upper lobe of the lung) के ऊपर यह आवाज सुन पड़ती है।

यहाँ यह बात ध्यानमें रखनेकी है—वोकेल रेजोनेन्सकी आवाज या तो बिल्कुल ही नहीं आती या बहुत घट जाती है। जहाँ तरलका कोई स्तर वक्ष-प्राचीरसे फेफड़ेको अलग कर देता है। अगर फुस्फुसावरण मोटा पड़ जाता है अथवा वायु-स्फीति रोग (emphysema) हो जाता है, तो भी यह आवाज घट जाती है।

एम्फोरिक या एकोइंग रेजोनेन्स (Amphoric or echoing resonance)—इसमें स्टेथास्कोपसे परीक्षा करते समय, साँस लेने, छोड़ने, खाँसने या बोलनेके समय, हृत्पिण्डके स्पन्दनके साथ-ही-साथ खाली बरतनपर चोट देनेकी तरह आवाज आती है, यह वायु-वक्ष (pneumothorax) या फेफड़ेमें बड़ा गह्वर हो जानेपर रोगी स्थानपर आती है।

एगोफोनी (Ægophony)—यह एक तरहकी नकियानी-सी या बकरीके बच्चेके मेमियानेकी तरह आवाज है। फुस्फुसावरण-प्रदाह (pleurisy) की कितनी ही अवस्थाओंमें यह आवाज आती है। जब **फुस्फुसावरणमें रस-संचय** होकर, रस थोड़ा रहता है और **पतले स्तरके कारण फेफड़ा वक्ष-प्राचीर**से अलग हो जाता है, तो यह नकियानेकी आवाज आती है। यह आवाज हँसलीके स्थानपर पीठकी ओर अक्सर सुन पड़ती है। श्वासोपनलियोंके पक्षाघातके कारण भी ऐसी आवाज आती है।

आये हुए अन्यान्य विकृत शब्द
(Adventitions sounds)

कितने ही कारणोंसे और नाना प्रकारकी बीमारियोंमें वक्षके भीतरसे और भी कितनी ही तरहकी आवाजें आया करती हैं, इन्हें **आगन्तुक या विकृत** शब्द कहा करते हैं।

ये आवाजें या तो फेफड़ेसे आती हैं अथवा फुस्फुसावरणसे अथवा वायुनली, श्वासनली या दूसरी छोटी-छोटी नलियोंसे आया करती हैं। इस समय एक गड़बड़ी और भी हो जाती है। केश या रोयेंदार स्थानोंपर स्टेथास्कोप रखनेके कारण, यदि वक्ष-प्राचीर और स्टेथास्कोपके बीच कुछ दरार-सी रह जाती हो, तो भी ये आवाजें आने लगती हैं। इसलिये, ऐसे केशवाले स्थानोंको तर कर लेना चाहिये और तब परीक्षा आरम्भ करनी चाहिये। फेफड़े तथा श्वासनलियोंसे जो आवाजें आती हैं, उनपर सबके पहले ध्यान देना चाहिये।

राल्स (Rales)—इस ऊपर लिखे शब्दोंका एक दूसरा नाम राल्स भी है। राल्सके दो भेद हैं:—शुष्क राल्स और तर राल्स।

शुष्क राह्स (Dry rales)—इन सूखी राल्सोंको साधारणतः रांकाई (rhonchi) भी कहते हैं। ये आवाजें वायु पथ अर्थात् कण्ठनली, वायुनली, श्वासनली या सूक्ष्म श्वासनलियोंके भीतरसे उस अवस्थामें आती हैं, जब उनमें लसदार या कड़ा श्लेष्मा पैदा हो जाता है या इनके भीतरी गात्रकी श्लैष्मिक-झिल्ली मोटी पड़ जाती है। इसके अलावा, यदि इनके भीतरी गात्रकी मांस-पेशियोंमें ऐंठन पैदा हो जाती है, तो भी यह आवाजें आने लगती हैं, क्योंकि वायुके आवागमनकी राह सँकरी पड़ जाती है और इस तरह श्वास-प्रश्वाससे जो हवा जाती-आती है, उसमें बाधा पड़ती है। इस कारणसे एक तरहकी सूखी आवाज निकलती है, यह आवाज स्टेथास्कोप द्वारा भी सुननेमें आती है और बिना स्टेथास्कोपके भी ये सूखे राल्स (dry rales) सुननेमें आ सकते हैं।

इन आवाजोंके आकार प्रकारमें बहुत फर्क रहता है; क्योंकि ये जिन छोटी श्वासनलियोंके भीतरसे आती हैं, उनके अनुसार ही इनकी आवाज भी होती है।

सिबिलैण्ट रांकाई (Sibilant Rhonchi)—यह आवाज भी शुष्क राह्सके ही अन्तर्गत है। छोटी सूक्ष्म नलियोंसे ही यह आवाज आती है तथा साँस लेनेके अन्तके समयमें यह आवाज अधिक प्राप्त होती है; यह मध्यम तेजीकी होती है। यह आवाज सुननेमें कितने ही प्रकारकी होती है:—सीटी देनेकी तरह (whistling), बशीकी आवाजकी तरह (peeping), साँपकी साँसके आवाजकी तरह हिस-हिस शब्द (hissing) अथवा साँय साँय आवाज (wheezing)। साँस लेने और छोड़ने दोनों समय यह आवाज आती है; पर साँस लेनेके अन्तके समयमें यह आवाज जोरकी मिलती है। जब श्वास-नलियाँ (bronchi) बहुत सकुचित हो जाती हैं तथा उनमें बहुतसे छेद हो जाते हैं अथवा खूब सूक्ष्म श्वासनलियों (terminal bron-

chioles) में लसदार श्लेष्मा इकट्ठा हो जाता है, उसके भीतरवाली श्लैष्मिक-झिल्ली मोटी पड़ जाती है, तो हवाके आने-जानेमें रुकावट पड़ती है, इसीलिये यह आवाज होती है। श्वासनली-प्रदाह (bronchitis) और दमा (asthma) में यह आवाज सुन पड़ती है।

जब फेफड़ेके वायु-कोषसे निकला हुआ फेफड़ेका स्वाभाविक शब्द (vesicular murmur) स्वाभाविक शब्दकी अपेक्षा ज्यादा तेज हो जाता है, उस समय सूक्ष्मतम श्वास-नलियोंका प्रदाह फैलकर फेफड़ेके स्वाभाविक शब्दको नष्ट कर देता है और इसी वजहसे फेफड़ेकी स्वाभाविक आवाजके साथ सिबिलैण्ट रांकाईकी आवाज सुन पड़े, तो समझना होगा कि **सूक्ष्म श्वासनलियोंमेंसे कितनों ही पर रोगका आक्रमण हो गया है और कुछ अभीतक स्वस्थावस्थामें है।** सिबिलैण्ट रांकाईकी आवाज अलग भी आ सकती है अथवा आगे लिखे सोनोरस रांकाईसे मिली आवाजके रूपमें आ सकती है।

सिबिलैण्ट रांकाईके प्रभेद

अगर रांकाईकी आवाज साँय-साँय शब्दकी तरह हो, तो उसे **ह्वीजिंग रांकाई** (Wheezing Rhonchi) कहते हैं।

अगर रांकाईका शब्द सीटी देनेकी तरह हो, तो उसे **ह्विसलिंग रांकाई** (Whistling Rhonchi) कहते हैं।

अगर यह आवाज कौं-कौं शब्दकी तरह सुन पड़े, तो इसे **क्रोइंग रांकाई** (Crowing Rhonchi) कहते हैं।

सोनोरस रांकाई (Sonorous Rhonchi)—यह आवाज श्वास लेनेके आरम्भ कालमें ही विशेष सुन पड़ती है तथा यह जारी भी रह सकती है। शब्द बहुत तेज नहीं होता और सुननेसे ही सूखापन

मालूम होता है। आवाज नाकसे बोलनेकी तरह (snoring) या कबूतरके गुटरू-गुटरू (cooing) अथवा मधुमक्खीकी भनभनाहटकी आवाजकी तरह (humming) होती है। इसका भी कारण पूर्वकी भाँति ही है। जब सूक्ष्म तथा अधिकतर सूक्ष्मनलियोंमें लसदार श्लेष्मा इकट्ठा हो जाता है या उनके भीतरी गात्रकी श्लैष्मिक-भिल्ली मोटी पड जाती है और भीतरी गात्रकी मासपेशियोंमें ऐंठन पैदा हो जाती है, तब वायुके आवागमनकी राह सकीर्ण हो जाती है। इसी कारणसे भीतर आने-जानेवाली हवामें बाधा पड़ती है और यह आवाज पैदा हो जाती है। श्वासनली-प्रदाह, दमा वगैरहमें तो यह आवाज आती ही है, पर इसके अलावा श्वास-यन्त्रोंके अन्य रोगोंमें भी यह आवाज मिलती है। खासकर यक्ष्मामें भी जब श्वास नलियाँ जकड़ जाती हैं अथवा रुक जाती हैं, तो उस अवस्थामें भी यह शब्द प्राप्त होता है।

यहाँ यह बात ख्याल रखनेकी है, कि सिबिलेण्ट राकाईकी तरह सोनोरस रांकाईमें वायु-कोषसे निकली हुई फेफड़ेकी आवाजको रोक देनेकी शक्ति नहीं है। होता यह है, कि सोनोरस राकाईकी आवाज बहुत तेज होती है, इसीलिये फेफडेका स्वाभाविक शब्द (vesicular murmur) सुननेमें नहीं आता। बहुत ध्यान देकर सुननेपर तब कहीं सोनोरस राकाईके साथ फेफडेका स्वाभाविक शब्द, वह भी शायद ही कभी सुननेमें आता है।

इस सोनोरस राकाईकी आवाज कभी-कभी वक्षस्थलमें अलग भी सुननेमें आती है, पर अधिकतर ऐसा होता है, कि सोनोरस रांकाई और सिबिलैण्ट राकाई—ये दोनों ही आवाजें मिलकर वक्षके कितने ही स्थानोंमें—कहीं कम, कहीं अधिक यह आवाजें सुन पड़ती हैं। यह आवाज वक्षके किस स्थानसे आ रही है, इसका ठीक निर्णय करना मुश्किल हो जाता है, क्योंकि आवाज इतनी तेज होती है, कि अगर वक्षमें किसी एक ओरसे भी यह आती है और छोटी-सी श्वासनलीसे भी

निकलती है, तो भी यह उस ओरके समूचे वक्षमें और दूसरी ओरके वक्षमें भी सुन पड़ती है।

अगर केवल सोनोरस रांकाईकी ही आवाज आवे, तो कुछ ज्यादा डरकी बात नहीं रहती; क्योंकि इसमें फेफड़ेके वायु-कोशोंमें हवा जानेमें कोई विशेष बाधा नहीं पड़ती। कभी-कभी दोनों श्वासनलियोंमें किसी एकमें कड़ा श्लेष्मा जब अड़ जाता है, तो उस ओरके फेफड़ेके वायुकोषोंमें श्वास-प्रश्वासकी हवा नहीं जा पाती। इसीलिये उस ओरके वक्षमें किसी तरहकी आवाज नहीं मिलती, पर यही आवाज अगर रोगी खाँसने लगता है तो मिलने लगती है; क्योंकि खाँसनेके समय उस ओरकी श्वास-नलीमें हवाका आवागमन होने लगता है।

स्ट्रीडर (Stridor)—यह भी एक तरहकी कर्कश और साँय-साँय शब्दकी तरह ही आवाज है। कोई वायु-पथ संकीर्ण हो जानेके कारण यह आवाज आती है। बिना स्टेथास्कोप लगाये भी यह आवाज सुनी जा सकती है। जब बिना स्टेथास्कोप लगाये यह आवाज सुनते हैं, तब उसे अतिरिक्त आकर्णन (extra auscultation) कहा करते हैं।

तर राल्स
(Moist rales)

तर राल्सका एक दूसरा नाम क्रिपिटेशन (crepitation) भी है। यह आवाज लगातार नहीं होती, रह-रहकर हुआ करती है। यह या तो ऐलवियोलि (alveoli) या श्वासनली और छोटी श्वासोपनलियोंमें होती है। इनकी आवाज कानमें ऐसी आती है, मानो बुलबुले फट रहे हैं। इन आवाजोंका मतलब यह है कि वायु-कोष या वायुनलियोंमें तरल या रस इकट्ठा हो गया है।

तर राल्स तीन प्रकारके हैं :—

(१) फाइन क्रिपिटेशन (Fine crepitation)।

(२) मीडियम क्रिपिटेशन (Medium crepitation)।

(३) कोर्स क्रिपिटेशन (Coarse crepitation)।

फाइन क्रिपिटेशन (Fine crepitation)—किसी पक्षाघात-ग्रस्त नलीके खुलनेके कारण यह आवाज आती है। अर्थात् उसकी दीवार पहले लसदार रस स्रावके कारण जुट जाती है, पर श्वास कालमें उनपर हवाका जब दबाव पड़ता है और यह दबाव बढ़ता जाता है, तो अन्तमें उसका जुड़ा स्थान खुल जाता है और हवाको प्रवेश करने देता है। इस समय जब दीवारें अलग होती हैं, तो कड़क-सी आवाज होती है। तर अगुली और अगूठा जोरसे चिपकाकर कानके पास अगर किया जाये, तो इसी ढगकी आवाज आती है। यह अवस्था जब कितनी ही श्वास नलियोंकी हो जाती है, तब फाइन क्रिपिटेशनकी आवाज पैदा होती है, इसको **क्रिपिटेण्ट राल्स** भी कहते हैं। गहरी साँस लेनेके अन्तिम भागमें यह आवाज सुननेमें आती है और खाँसनेके बाद कुछ देरके लिये यह आवाज लोप हो जाती है। इससे यह भी मालूम होता है, कि फेफड़ेके किसी भागमें रस-स्राव हो जाता है। न्युमोनियाकी पहली अवस्थामें, फेफड़ेमें रस सचय होनेपर (congestion) तथा यक्ष्मा रोगकी पहली अवस्थामें तथा फेफड़ेके शोथमें (œdema of the lung) में इस तरहकी आवाज बराबर सुननेमें आती है।

मीडियम क्रिपिटेशन्स (Medium crepitations)—यह बड़ी-बड़ी वायु नलियोंमें सुन पड़ता है और श्वास-क्रियाके अन्तमें तथा प्रश्वासके आरम्भमें यह आवाज सुन पड़ती है। इसको **स्माल बब्लिंग राल्स** (small bubbling rales) भी कहते हैं। यह आवाज ऐसी आती है, मानो छोटे-छोटे बुलबुले फट रहे हैं (as bursting of the small bubbles)। छोटी श्वास-नलियोंके भीतर पतला फेनकी

तरह श्लेष्मा लगा रहनेपर, जब उनमें श्वास-प्रश्वासकी हवा जाती है, तो यह आवाज पैदा होती है। केशिकानली-प्रदाह (capillary bronchitis), श्वासनली-प्रदाहके साथ फेफड़ेका प्रदाह (broncho pneumonia) और फेफड़ेका प्रदाह (pneumonia) की रेजोल्यूशनवाली अवस्थामें अर्थात् फेफड़ेका प्रदाह जब आरोग्य होनेकी ओर आता है, तब वायु-कोषके बीचका लसदार श्लेष्मा ढीला होकर खाँसीके साथ जब निकलता है और यक्ष्माकी बीमारीकी वजहसे फेफड़ेकी कोमलता बढ़ जानेपर यह आवाज सुन पड़ती है।

कोर्स बब्लिंग क्रिपिटेशन (Coarse bubbling crepitation)—इसका दूसरा नाम लार्ज बब्लिंग राल्स (large bubbling rales) भी है। यह आवाज बड़ी श्वासनलियोंमें आती है और श्वास-प्रश्वासकी किसी भी अवस्थामें सुन पड़ती है। यह आवाज लगातार भी आ सकती है। फेफड़ेके गह्वरोंसे भी यह आवाज आती है।

आवाज बड़े-बड़े बुलबुले फटनेकी तरह होती है। **श्वासनली-प्रदाह** (ब्रांकाइटिस), **श्वासनलीका प्रसारण** (ब्रांकाइएकटेसिस) और **फेफड़ेमें गह्वर** हो जानेपर यह आवाज सुननेमें आती है।

कभी-कभी यह आवाज बड़े-बड़े बुलबुले फटनेकी तरह सुननेमें आती है, उस समय उसको **गर्गलिंग राल्स** (gurgling rales) कहते हैं।

मैटालिक टिंकलिंग (Metallic tinkling)—इसमें एक तरहकी जोरकी तीखी आवाज आती है। धातुपात्रपर बून्द गिरनेके समय या छोटे-छोटे बालूके कणसे मारनेके समय जिस ढंगकी आवाज आती है, यह आवाज भी उसी तरहकी होती है। यह ऐम्फोरिक ब्रीदिंगसे मिलती हुई है और इससे मालूम होता है, कि या तो फेफड़ेमें

बहुत बडा गह्वर बन गया है अथवा वायु वक्ष (pneumothorax) रोग हो गया है।

जिन जिन स्थानोंपर यह राल्सकी आवाज सुन पडती है, उस स्थानोंपर खूब ध्यान देना चाहिये। यदि यह **फुस्फुस-शिखर**पर सुन पडे, तो तुरन्त समझ लेना चाहिये, कि **यक्ष्मा** (tuberculosis) हो गया है। यदि **फुस्फुस तलदेश** (bases of the lungs) मे मीडियम या कोर्स क्रिपिटेशनकी आवाज आये तो हो सकता है, कि थोड़ा सा रक्त स्राव हुआ है, जो आप से-आप ही तेजीसे दूर हो जायगा। यदि रोगी कई घण्टोंसे शान्तिसे साँस लेता हुआ पडा हो और खासकर जब वह बिछावनपर पडा हो, उस समय कई क्रिपिटेशनोंकी आवाजें सुन पड सकती हैं और ये फुस्फुस शिखरके स्थानपर भी सुनी जा सकती हैं। यह आवाजें सामयिक कारणोंसे पैदा हो जा सकती हैं, पर इन्हें यों ही बिना ध्यान दिये न छोड देना चाहिये और काफी सन्देहकी दृष्टिसे देखकर इनको परीक्षा करनी चाहिये और रोगीकी तरफसे सावधान रहना चाहिये।

विभिन्न शब्द

फ्रिक्शन साउण्ड (Friction sound)—यह एक तरहकी रगड़की आवाज है, घसघस जैसी आवाज। यह आवाज साँस लेने और छोडने दोनों ही समय होती है, पर साँस लेनेके समय कुछ ज्यादा सुननेमें आती है। यह फ्रिक्शन शब्द भी खूब धीमा, मध्यम तथा जोरका हो सकता है। कितनी ही अवस्थाओंमें तो यह आवाज एकदम आती है, पर कोर्स राल्स भी ऐसा ही होता है, अतएव इनका प्रभेद करना मुश्किल हो जाता है।

सबसे प्रधान प्रभेद तो यह है, कि यह फ्रिक्शन शब्द तो श्वास लेनेकी उसी अवस्थामें सुन पड़ता है, जब पटल आपसमें रगड़ खाते हैं। वक्षमें बहुत अधिक दर्दकी वजहसे जब रोगी ठीक-ठीक श्वास नहीं ले सकता, उस समय यह फ्रिक्शन साउण्ड सुननेमें नहीं आती। इसलिये, ठीक-ठीक श्वास जब रोगी ले सकता हो, तब उसे गहरी साँस लेनेको कहना चाहिये। इससे दोनों फुस्फुसावरणमें रगड़ पड़ेगी और यह फ्रिक्शन साउण्ड सुननेमें आयगा। कभी-कभी यह फ्रिक्शन साउण्ड बहुत तेज हो जाती है, जब स्टेथास्कोपका ज्यादा दबाव पड़ता है ; पर इस दबावके कारण राल्स नहीं बढ़ जाता। सन्देहजनक शब्दोंका आना, दर्दका मौजूद रहना तथा रोगीके रोगका इतिहास इन सबसे निदानमें सुविधा होती है।

फ्रिक्शन और क्रिपिटेशन साउण्डका प्रभेद

१। क्रिपिटेशन साउण्ड—साँस लेने और छोड़ने दोनों ही समय सुना जाता है और नहीं भी सुना जा सकता है ; परन्तु **फ्रिक्शन साउण्ड**—साँस लेने और छोड़ने—दोनों ही समय सुना जाता है।

२। क्रिपिटेशन साउण्ड—स्टेथास्कोप द्वारा वक्षपर दबाव डालनेसे तेजी बढ़ जाती है, पर फ्रिक्शन साउण्डमें यह तेजी नहीं बढ़ती।

३। क्रिपिटेशन साउण्ड खाँसनेके बाद अपनी जगहसे हट जाया करती है, पर फ्रिक्शनकी आवाज अपनी जगह नहीं छोड़ती।

४। क्रिपिटेशनकी आवाज स्पर्शनसे अनुभवमें नहीं आती, पर फ्रिक्शन अनुभवमें आ जाती है।

५। क्रिपिटेशनकी आवाज छातीमें बहुत गहरायीसे आती मालूम होती है, पर फ्रिक्शनकी उतनी गहरायीसे आती नहीं मालूम होती।

अनैच्छिक खाँसी (Involuntary cough)—इसमें इच्छा न रहनेपर भी खाँसी आती है। ब्राकाइटिस, यक्ष्मा प्रभृति बहुत सी फेफड़ेकी बीमारियोंमें ऐसी खाँसी आती है। इसमें गलेमें सुरसुरी होकर रोगीको खाँसी आती है और उसे बहुत तकलीफ होती है। बहुत देरतक खाँसनेके बाद कहीं थोड़ा-सा बलगम निकलता है। चेहरा लाल या पीला पड़ जाता है, यह रातमें या खूब तड़केके वक्त ज्यादा आती है।

आक्षेपिक खाँसी (Spasmodic cough)—यह खाँसी बहुत जल्दी जल्दी आती है। रोगी किसी भी तरह दम नहीं ले पाता—एकके बाद दूसरा दौरा हो जाता है। हूपिंग कफमें ऐसी ही खाँसी रहती है, यह भी एक प्रकारकी अनैच्छिक खाँसी ही है।

रिफ्लेक्स खाँसी (Reflex cough)—इसका दूसरा नाम **स्नायविक खाँसी** (nervous cough) भी है। श्वास यन्त्रकी कोई बीमारी न रहनेपर भी यह खाँसी आती है। शरीरके किसी स्थानोंमें स्नायविक उत्तेजनाके कारण यह खाँसी आने लगती है। यह खाँसी सूखी खाँसीके ढंगकी होती है। धूम्रपान करने, गलकोषमें कोई उद्भेद निकलने, कानसे मैल निकालने या कान खुजलानेके समय, पाचन-क्रियाकी गड़बड़ीके कारण या पेटमें क्रिमि होनेके कारण या हृदावरण-प्रदाह होने या शरीरमें ठण्डी हवा लगनेके कारण उत्तेजित होनेकी वजहसे यह खाँसी आने लगती है।

सूखी खाँसी (Dry cough)—इसकी आवाज एकदम सूखी रहती है अर्थात् इसमें बलगमकी घरघराहट बिल्कुल ही नहीं आती ; बलगम भी नहीं निकलता। न्युमोनिया, ब्राकाइटिस, प्लुरिसी इत्यादि बहुत सी बीमारियोंकी पहली अवस्थामें इसी ढंगकी खाँसी आया करती है।

तर खाँसी (Moist or loose cough)—इसको ढीली खाँसी भी कहते हैं। इसमें बलगमकी घरघराहट स्पष्ट मालूम होती है

और मालूम होता है, कि श्वास-प्रश्वासमें कोई तरल पदार्थ अवश्य वर्त्तमान है। खाँसनेपर सहजमें ही बलगम भी निकल जाता है। फेफड़ेमें फोड़ा, श्वासनलीका फैल जाना, फेफड़ेका शोथ, यक्ष्मा प्रभृति बहुतसे रोगोंमें ऐसी खाँसी दिखाई देती है।

कंठनालीय खाँसी (Laryngeal cough)—इसका दूसरा नाम क्रूप खाँसी (croup cough) या काली खाँसी भी है। इसकी आवाज ऊँची होती है और धातुकी आवाज-जैसी आवाज इसमें आती है। कंठनाली-प्रदाह (laryngitis), यक्ष्मा, कंठनालीमें बाहरकी कोई चीज जाना, तालुमूल ग्रन्थिका बढ़ना, हिस्टीरिया प्रभृतिमें इस ढंगकी खाँसी दिखाई देती है।

जाड़ेकी खाँसी (Winter cough)—यह खाँसी सर्दीके दिनोंमें ही बढ़ती है, गर्मीमें घट जाती है। पुराना ब्रांकाइटिस, यक्ष्मा और वायुस्फीति रोगमें यह खाँसी दिखाई देती है।

भिन्न-भिन्न खाँसियोंकी प्रकृति

खाँसीकी प्रकृतिपर विचार करते समय यह ध्यानमें रखना पड़ता है, कि यह एकाध बार झोंकसे आकर रह जाती है या आवेशिक अर्थात् रह-रहकर आती है। फेफड़ेके यक्ष्मा, कंठनालीका दानेदार प्रदाह (granular pharyngitis) और स्नायविक उत्तेजनाके कालमें इसी ढंगकी खाँसी आती है। **ब्रांकाइटिस तथा पर्टुसिसमें** इसी ढंगकी खाँसी देखनेमें आती है।

यह भी ध्यान देनेकी बात है, कि खाँसनेमें कहीं दर्द या मिचली तो नहीं होती ; इसकी आवाज दबी है, जोरकी है अथवा कर्कश है। **सर्दीकी खाँसीमें**—पहले खाँसी धीमी और सूखी रहती है, पर ज्यों-ज्यों बलगमका स्राव बढ़ता है, त्यों-त्यों आवेश बढ़ता जाता है और तबतक खाँसी आती रहती है, जबतक कि बलगम नहीं निकल जाता।

ब्रांकाइटिसमें ऐसा ही होता है, पर इसमें बहुत जल्दी-जल्दी खाँसी आती है। खाँसीका बहुत तीव्र आवेश रहता है और अक्सर **ह्विजिंग** शब्द आता है।

यक्ष्माकी प्रारम्भिक अवस्थामें—खाँसी थोड़ी-थोड़ी देरपर तेज और बार-बार आती है। यह सूखी खाँसीकी तरह रहती है ; क्योंकि इसमें श्लेष्माकी घरघराहट नहीं सुन पड़ती। इसके बाद फिर स्राव ज्यादा होता है और बलगम भी ढीला पड़ जाता है तथा बहुत जल्दी-जल्दी खाँसी आने भी लगती है। तेज बीमारियोंमें तो वमन भी होता देखा जाता है।

स्नायविक खाँसी—थोड़ी देरतक सूखीके ढगकी रहती है और काफी समयका अन्तर दे-देकर आती है। पेरिफेरल स्नायुके उत्तेजित होनेके कारण भी इस ढगकी खाँसी आती है। चोटकी गड़बड़ी, फेंफड़ा, कान या दाँतके रोग अथवा गर्भावस्थामें इसी ढंगकी खाँसी आती है।

आक्षेपिक और तेज खाँसीका कारण—कंठकी कोई स्थानिक बीमारी भी हो सकती है। इस ढगकी खाँसीकी परीक्षा करते समय कंठ, शुण्डिका वगैरहकी भी परीक्षा कर लेनी चाहिये।

प्लुरिसी, न्युमोनिया और प्लुरोडाइनियामें—खाँसी सूखी, बार-बार आनेवाली तथा तंग करनेवाली होती है।

लैरिंजाइटिस और क्रूपमें—जोरकी आवाजके साथ खाँसी आती है, पर आवाज अक्सर कर्कश भी रहा करती है।

हूपिंग कफ (कुकुर खाँसी—Whooping cough)—इस तरहकी बीमारीमें कुत्ता भूकनेकी तरह आवाज खाँसीके अन्तमें आती है। कभी-कभी इसी तरह बराबर खाँसीका दौरा होता है। इस समय वक्षकी परीक्षा करनेपर साँस छोड़नेके समय दोषपूर्ण आवाजें भीतरसे आती हैं और साँस लेनेपर कौं-सी आवाज मिलती है। इस समय आकर्णन द्वारा परीक्षा करनेपर वेसिक्युलर मरमरकी आवाज नहीं सुन

पड़ती। इसका कारण यह है, कि स्वरयंत्रच्छद सँकरा पड़ जाता है और हवा बहुत धीरे-धीरे प्रवेश करती है। श्वासनलीके राल्स अक्सर सुन पड़ते हैं। इसमें कुत्ताके भूकने-जैसी आवाज इतनी स्पष्ट आती है, कि रोग-निदानमें कोई गड़बड़ी नहीं रहती, कभी-कभी ज्वर भी रहता है।

इन्फ्लुएंजा (Influenza)—इसमें ज्वरके साथ फेफड़ौंपर आक्रमण हो जाता है, पहले सर्दी होती है, फिर ज्वर, इसके बाद वायु-नलीभुज-प्रदाह पैदा हो जाता है, बहुत कमजोरी मालूम होती है अथवा न्युमोनिया हो जाता है। जब छोटी-छोटी कोशिकाओंतक ब्रांकाइ-टिसका हमला होता है, तो रोगी नीला पड़ जाता है ; श्वास-प्रश्वासमें कष्ट होता है। वक्षसे ब्रांकाइटिस या न्युमोनियाकी भाँतिके शब्द ही आकर्णनके समय प्राप्त होते हैं।

न्युमोनिया (Pneumonia)—इसको फुस्फुस-प्रदाह भी कहते हैं। इसमें एक या दोनों ओरके फेफड़ेमें प्रदाह हो जाता है। कन्धा और कलेजेकी हड्डीके पीछे दर्द, खुसखुसी खाँसी, श्वास-प्रश्वासका तेज हो जाना, कमजोरी, श्वासमें बदबू प्रभृति लक्षण प्रकट होते हैं।

परीक्षामें—पहले तो दोनों ओरके वक्षमें कोई अन्तर नहीं दिखाई देता, पर यदि फेफड़ेके निम्न खंडपर रोगका हमला हो जाता है, तो रोगवाले पार्श्वमें गति कम होती है। रोगी फेफड़ेके कारण, उसी ओर वक्ष-प्राचीरकी बढ़ी हुई गति, स्पर्शन-कालमें मालूम हो सकता है, दर्शन-कालमें श्वास-प्रश्वासकी तेजी तथा प्रत्येक बार श्वास लेनेके समय नथुनोंका फैलना प्रभृति लक्षण दिखाई देते हैं। परिमापनमें—रोगी पार्श्वके वक्षकी माप १ या १½ सी० एम० बड़ी मालूम होती है इत्यादि।

स्पर्शन—रोगवाले पार्श्वको छूनेसे ही मालूम होता है, कि रोगवाले पार्श्वका वक्ष नहीं फैलता। फुस्फुसावरणका कम्पन भी मालूम होता

है। जिस ओर रोग रहता है, उस ओरका फ्रेमिटस शब्द भी बढ़ा रहता है। यह याद रखना चाहिये, कि यदि गाढ़े बलगमसे श्वास-नलियाँ भरी रहती हैं, तो फ्रेमिटस घट जाता है।

आघातन—सूजनकी अवस्थामें टिम्पेनिटिक या स्कोडेइक ढंगकी आवाज मिलती है ; जहाँका फेफड़ा कड़ा है, वहाँ इसी ढंगकी आवाज आती है। फेफड़ोंमें जब यकृत-भाव प्राप्तवाली अवस्था आती है, तो आघातनमें धीमी आवाज आती है। जहाँका फेफड़ा कड़ा पड़ जाता है, वहाँ मेटालिक आवाज भी आती है। यदि इसके साथ ही ऐम्फोरिक शब्द भी प्राप्त हो, तो समझना चाहिये कि गह्वर बन गया है।

आकर्णन—आरम्भावस्थामें शान्त दबी हुई आवाज मिलती है। बहुत आरम्भमें श्वासके अन्तमें फाइन क्रेपिटेशनकी आवाज आती है तथा कानके पास धीमी क्रेकिंगकी आवाज आती है, पर यह आवाज जबतक जोरकी पूरी साँस नहीं ली जाती, तबतक नहीं मिलती। इस दशामें स्वस्थावस्थाकी अपेक्षा बहुत कमजोर आवाज आती है, परन्तु लम्बी साँस लेनेपर आवाज हार्श-ब्रीदिंगकी तरह कर्कश हो जाती है ; इसीको ब्राको-वेसिक्युलर कहते हैं। रेड हेपाटिजेशनकी अवस्थामें और जब धीमी ठोस आवाज आती है, तो प्रश्वास शब्द टियुबुलर होता है। इस झोंककी हवा बहनेकी तरह श्वास-प्रश्वासके समय किसी तरहकी भी आवाज नहीं आ सकती है या ऐसी तेज आवाज आ सकती है, जो फेफड़ेकी किसी दूसरी बीमारीमें नहीं आती। यह आवाज स्वरयंत्र या टेंटुआकी आवाज है, जो श्वासनली और कड़े फेफड़ेके तन्तुओंके भीतरसे आती है। जब बड़ी-बड़ी श्वासनलियाँ रस स्राव या बलगमसे भरी रहती हैं, तो कितने ही रोगियोंमें टियुबुलर ब्रीदिंगकी आवाज नहीं मिलती। जब रेजोल्यूशन अर्थात् रोग आराम होनेकी ओर आता है, तो सब तरहकी श्लेष्माकी आवाजें मिलती हैं।

सारांश यह कि लोबर न्युमोनिया एकाएक पैदा हो जाता है, इसमें खाँसी, श्वासकष्ट, ज्वर, तेज बुखार वगैरह लक्षणोंके साथ चेहरा लाल, तेज श्वास, लाल रंगका लसदार बलगम निकलता है। इसकी तीन अवस्थाएँ हैं :—पहली अवस्थामें—आघातनकी आवाज टिम्पैनिटिकपर कुछ धीमी रहती है। कभी-कभी फाइन क्रेपिटेशनकी आवाज आती है। दूसरी अवस्थामें—एकदम डलनेस (धीमी आवाज), जोरकी श्वासनलियोंकी श्वासकी आवाज, वोकल रेजोनेन्स और फ्रेमिटस भी बढ़ा रहता है। तीसरी अवस्थामें—ठोस धीमी आवाज घट जाया करती है, ब्रांकियल ब्रीदिंग गायब हो जाती है। मध्यम और धीमा क्रेपिटेशन शब्द सुन पड़ता है ; वोकल रेजोनेन्स और फ्रेमिटस स्वाभाविक अवस्थामें आ जाते हैं।

क्रानिक इण्टरस्टाइटियल न्युमोनिया—परिश्रम करनेपर रोगीको श्वास-रोधकी तरह मालूम होता है। बलगम बहुत अधिक निकलता है और पीव-मिला-सा रहता है। फेफड़ा अच्छी तरह फैलता नहीं है या देरसे फैलता है। रोगवाले पार्श्वका कन्धा झुक जाता है। आघातनके समय एक सीमाबद्ध स्थानमें धीमी आवाज आती है और उसके चारों ओर धीमी आवाज होती है। सिकुड़े हुए फेफड़ेके कारण कलेजा खिंचा रहता है। आकर्णनमें कमजोर या ब्रांकियल ब्रीदिंगकी आवाज और कुछ क्रेपिटेशन और रांकाईके शब्द मिलते हैं। स्वरयंत्रकी प्रतिध्वनि और फ्रेमिटसकी आवाज बढ़ी रहती है।

नया ब्रांकाइटिस—रोगीको ज्वर और खाँसी रहती है, श्वास धीमा पड़ जाता है। बलगम पहले श्लेष्माभय और थोड़ा रहता है, पर पीछे श्लेष्मा और पीव-मिला हो जाता है। आघातन-कालमें स्वाभाविक शब्द ही प्राप्त होता है। आकर्णन-कालमें श्वास शब्द वेसिक्युलर रहता है और उसके साथ ही सोनोरस और सिबिलेण्ट रांकाईकी आवाजें आती हैं ; सूक्ष्म-नलियोंपर आक्रमण हो जानेपर सिबिलेण्ट रांकाईकी

आवाज ही ज्यादा आती है, स्वर यंत्रके शब्दोंमें कोई परिवर्त्तन नहीं होता।

पुराना ब्राकाइटिस (Chronic Bronchitis)—इसके ही अधिक लक्षण नये ब्राकाइटिसकी भाँतिके ही होते हैं, पर इनमें दर्द कम होता है और श्वासकष्ट अधिक रहता है। बलगम बहुत अधिक निकलता है और पीब मिश्रित रहता है। इसमें कोर्स क्रेपिटेशनकी आवाज ज्यादा आती है।

वायु-स्फीति रोग (Emphysema)—रोगी श्वासकी कमीकी तकलीफ भोगता है और वह बहुत कुछ नीला पड जाता है, उसका बलगम और खाँसी खूब बढी रहती है। वक्ष पीपाकार बन जाता है और साँस लेनेके समय फैलाव पूरा पूरा नहीं होता और श्वास त्यागका शब्द बढा रहता है। आघातनके कालमें हाइपर रेजोनेन्सकी आवाज होती है और कभी कभी टिम्पेनिटिक ढंगकी आवाज आती है। फेफडेके आस पासके यन्त्रोंपर दबाव पडता है और सुपरफिशियल कार्डियक डलनेसकी सीमा बहुत कुछ कम हो जाती है। आकर्णनमें—श्वासका शब्द कमजोर आता है और वोकल रेजानेन्स भी घट जाता है। इस रोगके साथ अक्सर पुरानी ब्राकाइटिसकी बीमारी सम्मिलित रहती है। इस अवस्थामें श्वास शब्द स्वाभाविकको अपेक्षा कर्कश (harsh) हो जाता है और श्वास छोडनेके समयकी मरमर आवाज देरतक आती रहती है।

फेफडेका यक्ष्मा रोग (Pulmonary tuberculosis)—आरम्भावस्थामें शरीरका वजन घटते जाना, भूख कम लगना, खाँसी बनी रहना और रातके समय पसीना होनेका लक्षण रहता है। इसके कुछ दिनों बाद तेज खाँसी हो जाती है या खासकर सबेरे आती है, प्रश्वास बढ जाता है, अतिसार, पतले दस्त आना, धीमा बुखार और प्रादाहिक रोगके अन्यान्य लक्षण दिखाई देने लगते हैं। दर्शनकालमें

वक्षकी गति घटी हुई मालूम होती है। स्पर्शनमें—वोकल फ्रेमिटस (स्वर-यंत्रका कम्पन) बढ़ा हुआ मिलता है। आघातनमें—किसी निश्चित स्थानपर धीमी आवाज आती है। यह आवाज खासकर अक्षकके ऊपर या नीचे आती है और कभी-कभी गह्वर बन जानेके भी शारीरिक लक्षण प्रकट होते हैं। आकर्णनमें—प्रश्वास काल बढ़ा हुआ मिलता है और श्वास ब्रांकियल ढंगका होता है। श्वासके शब्दमें क्रेपिटेशनकी आवाज मिली रहती है; यह आवाज मध्यम क्रेपिटेशन श्रेणीकी रहती है।

वक्षावरक झिल्ली-प्रदाह (*Pleurisy*)—इसमें ज्वर, रोगवाली जगहपर दर्द, रुक-रुककर, पर तेज श्वास-प्रश्वास और दबी हुई सूखी खाँसी रहती है। आरम्भिक अवस्थामें महीन फ्रिक्शनकी आवाज मिलती है। इसके पहले किसी भी अस्वाभाविक लक्षणका पता नहीं लगता; इसके बाद जब जल-संचय या रस-संचय होता है, तो रोगवाले स्थानकी आवाज धीमा हो जाती है; पर ऊपरकी ओर फेफड़ेमें टिम्पेनिटिक ढंगकी आवाज मिलती है। ज्यों-ज्यों यह धीमी आवाज बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों श्वास-शब्द, वोकल रेजोनेन्स और कम्पन (fremitus) की तेजी घटती जाती है और इसके बाद एक ऐसी भी अवस्था आती है, कि ये सभी शब्द एकदम नहीं पाये जाते। तरल रहनेके स्थानके ऊपर, बीमारीकी बढ़ी हुई अवस्थामें; श्वास-शब्द वायुनली (bronchi) से आया हुआ मालूम होता है और इसके साथ ही फाइन क्रेपिटेशनकी आवाज मिली रहती है। यदि रोगी आरोग्यकी ओर अग्रसर होता है, तो धीमी (dull) आवाजका आना घटता जाता है तथा श्वास-शब्द और वोकेल रेजोनेन्सकी आवाज धीरे-धीरे लौट आती है तथा जब तरल या रस एकदम सोख जाता है, तो फिर फ्रिक्शन सुन पड़ने लगता है; पर यह फ्रिक्शन पहलेकी अपेक्षा अधिक कर्कश रहता है। कितने ही रोगियोंमें, जब बीमारी बढ़ी रहती है तथा जब बीमारी घटनेकी ओर

[illegible], तो इगोफोनी सुन पड़ती है ; जब बहुत अधिक तरलका हो जाता है, तो आस-पासके यंत्र अपनी जगहसे हट जाते हैं ।

[illegible] (Pneumothorax)—एकाएक रोगी दर्द और श्वास-कष्टकी शिकायत करता है। रोगवाला पार्श्व गति-शक्ति-रहित और बिगड़ा रहता है, आघातनके समय—जोरकी या गहरी प्रतिध्वनि टिम्पेनिटिक ढगकी आती है और सिक्कोंसे आघातन करनेपर एक विशेष ढङ्गकी घण्टीकी तरह आवाज निकलती है। श्वास-शब्द या स्वर-यन्त्रकी प्रतिध्वनि (vocal resonance) नहीं आती। इसके सिवाय यदि कोई श्वासनली वायु-गह्वरसे मिल जाती है, तो एम्फोरिक रेजोनेन्सकी आवाज आने लगती है। यदि भीतर तरल रहता है, तो मेटालिक टिंकलिंगकी आवाज मिलती है ; आस-पासके यन्त्र अपने स्थानसे हट जाते हैं।

फेफड़ेसे रक्त-स्राव (Hæmorrhagic infaction of the lung)—यह उस समय होता है, जब कोई हृत्कपाटकी बीमारी होती है। इसका पता तब लगता है, जब एकाएक दर्द पैदा हो जाता है और खून-मिला थूक निकलता है। यदि फुस्फुस-पटलके बहुत पास ही यह रुकावट होती है, तो धीमी आवाज, श्वास-शब्दका बदल जाना और क्रेपिटेशनकी आवाज होती है।

दमा (Asthma)—इसे कोई खास बीमारी समझनेकी अपेक्षा अन्य रोगका उपसर्ग समझना ही अच्छा है। नाकमें अर्बुद या अन्य प्रकारकी उत्तेजना नाकमें पैदा हो जानेपर भी दमा हो सकता है ; मसाना और उदरकी बीमारीके कारण भी दमा होता है। ब्रांकियल (श्वासनली-सम्बन्धी) या स्पेजमोडिक (आक्षेपिक) दमा उन श्वासनलियोंके कारण ही होता है। इसमें रोगीको आगे झुककर बैठना पड़ता है या वह लेट नहीं सकता, बैठकर दिन-रात बितानी पड़ती है तथा बैठकर किसी चीजका इसलिये सहारा लेना पड़ता है, कि श्वास लेनेके काममें

आनेवाले स्नायुओंको कुछ मदद मिले। रोगीका चेहरा तमतमाया और रक्त-वाहिनियाँ कड़ी रहती हैं; श्वास छोड़नेमें ज्यादा देर लगती है और तकलीफ होती है। फेफड़ेमें आवश्यकतासे अधिक हवा प्रवेश कर जाती है। आघातन-कालमें—हाइपर रेजोनेन्स प्रतिध्वनि प्राप्त होती है। आकर्णनमें—पहले तो बाजा बजनेकी तरह आवाज आती है, फिर ह्वीज़िंग साउण्ड अर्थात् भनभनाहटकी आवाज आती है। इनके बाद जब बलगम ढीला पड़ जाता है, तो गहरा रांकाई सुन पड़ता है।